१

बापूका वह चमत्कार !

१५ अगस्त, १९४७ !

भारतके इतिहासमें सदा अमर रहनेवाला दिन ।

भारतके बच्चे-बच्चेमें देशभक्ति और राष्ट्रप्रेमकी पवित्र भावना पैदा करनेवाला दिन ।

राष्ट्रके हर नागरिकको देशकी आजादीके लिए सब-कुछ न्योछावर करनेकी प्रेरणा देनेवाला दिन ।

वह भारतकी आजादीका सुनहला दिन था ।

भारत आजाद हुआ राष्ट्रपिता महात्मा गांधीके प्रतापसे और उनकी सरदारीमें भारतकी आजादीके लिए लड़ने और मरने-खपनेवाले जवाहर, सरदार, राजेन्द्रबाबू और मौलाना आजाद जैसे नेताओं तथा देशके लाखों स्त्री-पुरुषों, नौजवानों, किशोरों और बालकोंकी बड़ीसे बड़ी कुरबानीके प्रतापसे ।

महासेनापति गांधीके साथ लड़नेवाले आजादीके ये लड़वैये कुछ निराले ही ढंगके थे । न तो उनके पास विदेशी हुकूमतसे लड़नेके लिए तीर-तलवार थे, न तोप-बन्दूकें थीं, न जहरीली गैसें थी और न बमगोले या मशीनगनें थीं । अगर कोई हथियार गांधीने उन्हें दिये थे तो वे थे सत्यके, अहिंसाके, प्रेमके और मानवताके । और अगर कोई युद्धकला

गांधीने उन्हें सिखाई थी तो वह थी विरोधीको सताने और मारनेकी नहीं, परन्तु विरोधीके हाथों कष्ट भोगनेकी और अवसर आने पर हंसते हंसते स्वयं मर मिटनेकी।

ऐसे अनोखे सैनिकोंके हाथोंमें दिये हुए सत्य-अहिंसा-प्रेमके अनोखे हथियारोंकी शक्तिसे बापूने विदेशी शासकोंके शरीरों पर नहीं परन्तु उनके मनों पर, उनकी आत्मा पर विजय पाई और भारतको स्वराज्य दिलाया। संसारके इतिहासकी यह एक अनुपम और आश्चर्यजनक घटना है !

ऐसे स्वराज्यकी, ऐसी स्वतंत्रताकी खुशियां जिस १५ अगस्त, १९४७ के दिन सारा राष्ट्र मना रहा था, जिस दिन भारतके लाड़ले नेता जवाहर, सरदार, राजेन्द्रबाबू और मौलाना आजाद दिल्लीमें भारतके अंतिम वाइसरॉय लॉर्ड माउन्टबैटनके हाथसे देशके शासनकी बागडोर अपने हाथोंमें लेनेकी तैयारियां कर रहे थे, उस दिन इन सारे नेताओंका नेता गांधी दिल्लीसे दूर कलकत्तेमें बैठा था !

उसे न तो सत्ताका मोह था, न राजगादीका मोह था और न लोगोंसे अपनी पूजा करानेका मोह था। वह कलकत्ता शहरके एक गंदे, धूलभरे, खंडहर-से मकानमें बैठकर आपसमें लड़नेवाले हिन्दुओं और मुसलमानोंको प्रेमका, भाईचारेका और मेलजोलका पाठ सिखा रहा था। वह जानता था कि जब तक भारतके सब लोग, खास करके उसकी दो महान कौमें—हिन्दू और मुसलमान—आपसमें मिलजुल [illegible] गीं, तब तक भारतकी आजादी म

बापू काश्मीरसे लौटकर नोआखाली जा रहे थे। बीचमें दो-एक दिनके लिए कलकत्ता रुके थे। उस समय कलकत्तेमें हिन्दू-मुसलमानोंका दंगा छिड़ गया था। शहरके हिन्दुओंने १९४६ के अत्याचारोंका बदला लेनेके लिए मुसलमानोंको मारना-काटना शुरू कर दिया था। कलकत्तेके मुसलमान घबरा उठे थे। उनके नेताओंको लगा कि केवल गांधीजी ही इस समय मुसलमानोंको हिन्दुओंके आक्रमणसे बचा सकते हैं। वे दौड़े दौड़े गांधीजीके पास पहुंचे और बोले:

"खुदाके नाम पर आप कुछ दिन और कलकत्तेमें रुक जाइये। आप हिन्दुओंको अगर समझायेंगे नहीं, तो कलकत्तेके मुसलमानोंकी खैर नहीं है।"

और दुखियोंके बेली बापू रुक गये। वह १३ अगस्त, १९४७ का दिन था।

लेकिन कलकत्तेमें उनके रुकनेका पता चलते ही हिन्दुओंका पारा चढ गया। बेलियाघाटा मुहल्लेके जिस मकानमें वे ठहरे थे, वहां हिन्दू नेताओंके भड़काये हुए कुछ हिन्दू नौजवान आ पहुंचे। उनके चेहरे तमतमाये हुए थे। धर्मका अन्धा जोश उनकी वाणीमें और उनके व्यवहारमें साफ झलक रहा था। सारी सभ्यता और नम्रताको भूल कर उन्होंने तीखे स्वरमें बापूसे पूछा:

"आप यहां किसलिए आये हैं? किसने बुलाया है आपको? दो-चार मुसलमान मारे नहीं गये कि आपने कलकत्तेमें

आकर अड्डा जमा लिया! लेकिन पिछले साल जब इन्हीं दिनों हिन्दुओंका संहार हो रहा था, उनके मकानों और दुकानोंको जलाकर खाक बनाया जा रहा था, उनकी बहू-बेटियोंकी लाज लूटी जा रही थी और उनके मासूम बच्चोंको मौतके घाट उतारा जा रहा था, तब आप क्यों नहीं आये यहां? आज जब हमने अत्याचारी मुसलमानोंको सबक सिखानेका बीड़ा उठाया, तब आप आ धमके मुसलमानोंके तारनहार बन कर!"

बापू: "दुखियों और पीड़ितोंकी सेवा करना मैं अपना धर्म मानता हूं। नोआखालीके निराधार और दुखी हिन्दुओंकी सेवाके लिए भी मैं गया ही था न? अब मेरी आत्मा मुझसे कहती है कि कलकत्तेके मुसलमानोंकी सेवा मुझे करनी चाहिये। इसीलिए मैं यहां रुक गया हूं।"

"लेकिन आप हमारे बीचमें न आइये। हमें यहांके मुसलमानोंसे पूरा बदला चुका लेने दीजिये, जिससे वे फिर कभी सिर न उठा सकें।" नौजवान बोले

"नहीं, नहीं, मेरे बच्चो, बदलेकी भावना रखना ठीक नहीं है। बदला लेकर हम अन्याय करनेवालेको हमेशाके लिए सुधार नहीं सकते। हिंसाका बदला हिंसासे लेकर हम हिंसाको मिटा नहीं सकते। आगसे आग बुझती नहीं, बल्कि और बढ़ती है। इसलिए बदलेका रास्ता गलत है। बैरको जैसे प्रेमसे और घृणाको करुणा और क्षमासे मिटाया जा सकता है, वैसे ही हिंसाको मिटानेका एकमात्र मार्ग अहिंसाका

है, प्रेमका है, क्षमाका है, मित्रताका है और भाईचारेका है।" शांत, सौम्य और स्नेहपूर्ण वाणीमें बापूने समझाया।

नौजवान: "हम यहां आपसे हिंसा-अहिंसाका उपदेश सुनने नहीं आये हैं। हम तो इतना ही कहने आये हैं कि आप कलकत्तेसे तुरन्त चले जाइये।"

गांधीजी: "तुम्हारी इस जबरदस्तीके सामने मैं झुकनेवाला नहीं हूं। किसीकी जबरदस्तीके सामने झुकना मेरे स्वभावमें ही नहीं है। हां, यदि तुम मेरी गलती मुझे समझा दोगे, तो मैं आज ही कलकत्ता छोड़ दूंगा।"

नौजवान: "हिन्दू होकर आप हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज पर आक्रमण करनेवाले मुसलमानोंका पक्ष लें, उन्हें बचायें, इससे बड़ी गलती और क्या हो सकती है?"

"नहीं, यह मेरी गलती नहीं है। आज हिन्दू अपने धर्मके मानवताके उपदेशको भूल गये हैं। उन्होंने ईश्वरका रास्ता छोड़ कर शैतानका रास्ता पकड़ लिया है। मैं उन्हें फिरसे ईश्वरके रास्ते पर—प्रेम, दया, क्षमाके रास्ते पर मोड़ने आया हूं।"

लेकिन नौजवान शांत होनेके बजाय और भड़के। अपने नेताओंकी सिखाई-पढ़ाई बातको दोहराते हुए उन्होंने कहा: "आप हिन्दुओंके शत्रु हैं। हिन्दू धर्मके भी शत्रु हैं। आप विधर्मियोंका पक्ष लें, यह आपके लिए लज्जाकी बात है।"

गांधीजी शांत भावसे बोले: "भोले नौजवानो, मैं जन्मसे हिन्दू हूं, धर्मसे हिन्दू हूं और कर्मसे भी हिन्दू हूं।

मैं हिन्दुओंका सदा भला ही चाहता हूं। जब मैं देशके मुसलमानों, पारसियों और ईसाइयोंको भी अपने भाई मानता हूं, तो अपने धर्मबन्धु हिन्दुओंका शत्रु कैसे हो सकता हूं?”

नौजवान थोड़े विचारमें पड़ गये। लेकिन उन्हें पूरा भरोसा नहीं हो रहा था। वे बोले: “कुछ भी हो, लेकिन आप कलकत्तेके हिन्दू-मुसलमानोंको भगवानके भरोसे छोड़कर यहांसे चले जाइये।”

गांधीजीने दृढ़तासे कहा: “जब तक मेरा काम पूरा नहीं होता, मैं कलकत्ता किसी भी हालतमें नहीं छोड़ूंगा। तुम चाहो तो मेरा काम बंद करा सकते हो। मुझे कैद कर सकते हो, मार सकते हो, मेरी जान भी ले सकते हो। मौतसे मैं डरता नहीं। अपने धर्मका पालन करते करते तुम जैसे बच्चोंके हाथों यदि मरना भी पड़े, तो मुझे आनंद ही होगा।”

इस बार नौजवान कुछ बोले नहीं। अपनी गलती शायद उन्हें समझमें आ गई।

[illegible] का असर होते देख बापूने कोमल स्वरमें [illegible] भारतके नौजवान हो। भारत तुमसे [illegible] है। तुम्हें अपनी बुद्धिका उपयोग [illegible] कि भेदोंसे ऊपर उठना चाहिये और [illegible] जाना चाहिये। मैं तुमसे प्रार्थना [illegible] उदार बनाओ और सारे [illegible] मदद करो।”

बापूकी नम्रताने नौजवानोंका सारा गुस्सा उतार दिया और उन्हें भी नम्र बना दिया। उन्होंने अपने अशिष्ट व्यवहारके लिए हाथ जोड़कर बापूसे क्षमा मांगी।

उनके नेताने बापूसे कहा: "बापूजी, हम आपके स्वयंसेवक बन कर आपका काम करनेको तैयार हैं। बताइये, हम कैसे इसका आरंभ करें?"

गांधीजी: "तुम अपने जैसे उत्साही नौजवानों और किशोरोंको इकट्ठा करो और देशकी एकताके सम्बन्धमें मेरे विचार उनके गले उतारो। सब मिलकर दंगोंके स्थानोंमें जाओ और शहरके लोगोंको समझाओ कि हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, पारसी, ईसाई वगैरा सब एक ही ईश्वरके बालक हैं, एक ही भारत माताकी संतान हैं। इसलिए सब भाई भाई हैं। धर्म अलग अलग हो सकते हैं। लेकिन वे सब मानव मानवकी एकताका, प्रेमका, मित्रताका तथा भातृ-भावका उपदेश देते हैं। वे आपसमें लड़ना और एक-दूसरेकी जानके ग्राहक बनना नहीं सिखाते।"

नौजवान शांतिसे बापूका उपदेश सुन रहे थे। क्रोधसे तने हुए उनके चेहरों पर अब कोमलता खेलने लगी थी और कुछ समय पहलेकी उनकी लाल लाल आंखोंमें बापूके प्रेममंत्रका सौम्य तेज झलकने लगा था।

बापूने पूछा: "बोलो, करोगे तुम भारतके कल्याणका यह पवित्र कार्य? बड़ेसे बड़े खतरेका सामना करके भी क्या समझाओगे मेरी बात कलकत्तेके लोगोंको?"

सब एकस्वरमें उत्साहसे बोले : "हां बापूजी, बड़ेसे बड़े खतरेका सामना करके भी हम यह काम करेंगे।"

"भगवान तुम्हें इसके लिए पूरा बल दे!"

गांधीजीकी प्रेरणासे इन नौजवानोंने कलकत्तेके सैकड़ों नौजवानों, किशोरों और बालकोंका एक बड़ा दल संगठित कर लिया। उन्हें गांधीजीके मंत्रकी दीक्षा दी। और २५–५० स्वयंसेवकोंकी टुकड़ियां बनाकर निकल पड़े कलकत्तेकी सड़कों पर। देशके भलेका विचार रखनेवाले और सब जातियोंके मेलजोलमें ही राष्ट्रका हित देखनेवाले दूसरे नेताओंका साथ तो उन्हें मिला ही।

फिर क्या था? दंगा-फसाद, मारकाट और ईर्ष्या-द्वेषके जो काले बादल कलकत्ते पर छा गये थे, वे देखते ही देखते बिखर गये। और 'भारत माताकी जय', 'महात्मा गांधीकी जय', 'हिन्दू-मुस्लिम भाई भाई' के बुलन्द नारोंसे कलकत्तेके मुहल्ले गूंज उठे। नौजवानों और किशोरोंका यह जोश बिजलीकी गतिसे शहरके स्त्री-पुरुषों और बालकोंमें फैल गया। और सभीके मुंहसे 'हिन्दू-मुस्लिम भाई भाई' का स्वर फूटने लगा।

गांधीजीका अपना प्रयत्न तो चल ही रहा था। वे दंगोंके स्थानोंमें जाते थे, अत्याचारके शिकार बने लोगोंको ढाढ़स बंधाते थे। दोनों कौमके नेताओंसे अपनी अपनी कौमके लोगोंको सच्चा रास्ता बतानेकी अपील करते थे। और

शामको प्रार्थना-सभामें अहिंसा और प्रेमके उपदेशकी गंगा बहाते थे।

इन सब प्रयत्नोंका दो ही दिनमें आश्चर्यजनक परिणाम आया। १५ अगस्त, १९४७ का दिन कलकत्तेके लोगोंके लिए शांतिका और प्रेमका सन्देश लेकर आया। प्रातःकालसे ही हिन्दू और मुसलमान प्रेमसे गले मिलने लगे और धर्म व कौमके भेदको भूल कर साथ साथ मंदिरों और मसजिदोंमें जाने लगे।

लड़ानेवाले हिन्दू नेताओंकी तो सारी बाजी ही पलट गई। वे परेशान थे कि गांधीने यह कैसा जादू कर दिया!

एक नेता कहता: "इस गांधीने तो मुसलमानोंका सफाया करनेके हमारे सारे मनसूबों पर पानी फेर दिया।"

दूसरा कहता: "शहरमें जहां देखो वहां हिन्दू और मुसल्मान प्रेमसे हंस-बोल रहे हैं। जैसे दोनोंमें कभी कोई दुश्मनी थी ही नहीं!"

तीसरा सुनाता: "अरे, हिन्दू और मुसलमान दोनों हाथमें हाथ मिलाकर मंदिरों और मसजिदोंमें जाते हैं और हिन्दू-मुस्लिम एकताकी प्रार्थना करते हैं। कोई पुजारी, कोई मौलवी या मुल्ला उन्हें रोकता नहीं; उलटे हंसते हंसते दोनों कौमवालोंका स्वागत करता है!"

चौथे नेताने शांत स्वरमें पूछा: "लेकिन क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि इस सबके पीछे ईश्वरके दूत महात्मा गांधीकी तपस्याका ही प्रताप है?"

सब नेता एक साथ बोल उठे: "तुम सही कहते हो। गांधीजीकी दैवी शक्तिके सामने हमारी राक्षसी शक्ति पंगु सिद्ध हुई है। महीनों सिखा-पढ़ा कर हिंसाके लिए तैयार किये हुए सारे नौजवान गांधीजीके घंटे भरके उपदेशसे बदल गये। यह कैसा चमत्कार है?"

ठीक यही बात कलकत्तेके हिन्दू, मुसलमान और दूसरी कौमोंके हर आदमीके मुंहसे सुनाई पड़ती थी:

"कलकत्तेमें आज जो अपूर्व दृश्य दिखाई देता है, वह गांधी बाबाका ही चमत्कार है।"

लेकिन बापू इस सबके पीछे ईश्वरका चमत्कार देखते थे।

उस दिन शामकी प्रार्थना-सभामें उन्होंने लाखों लोगोंके सामने कहा:

"आजका दिन हमारे लिए परम सौभाग्यका दिन है। ईश्वरकी कृपासे जो आजादी हमें मिली है वह तभी टिकेगी, जब हम जाति, धर्म, प्रान्त आदिके भेदोंको भूल जायंगे और शुद्ध हिन्दुस्तानी बन कर भारतकी सेवा करेंगे।

"कलकत्तेमें आज जो कुछ हो रहा है वह मेरा चमत्कार नहीं है। उस प्रभुका चमत्कार है। उसीने दोनों कौमोंको प्रेमसे मिल जानेकी प्रेरणा दी है। मुझ जैसा बूढ़ा आदमी भला क्या कर सकता है?

"भगवान करे आजकी यह शांति, दोनों कौमोंका यह प्रेम सदा बना रहे!"

२

अहिंसा जीती : हिंसा हारी

३० जनवरी, १९०८ का दिन। दक्षिण अफ्रीकाका जोहानिसबर्ग शहर। एक मसजिदके विशाल मैदानमें रातके ११–१२ बजे हिन्दुस्तानियोंकी एक बड़ी सभा भरी थी। सभाके बीच एक ऊंचे मंच पर हिन्दुस्तानियोंके प्यारे नेता गांधी भाई — मोहनदास करमचंद गांधी — खड़े होकर सभाके लोगोंको जनरल स्मट्सके साथ हुए समझौतेकी शर्तें समझा रहे थे :

"अगर कौमके लोग सरकारी दफ्तरमें जाकर अपनी मरजीसे परवाने ले लें, तो सरकार २२ मार्च, १९०७को ट्रान्सवालकी पार्लियामेन्टमें पास हुआ वह काला कानून रद कर देगी, जिसने हाथकी दस अंगुलियोंकी छाप देकर परवाना लेनेकी बात हम हिन्दुस्तानियों पर लादी है।"

सभाके कुछ लोगोंने शंका उठाई। जनरल स्मट्सकी सरकारने अगर कौमको दगा दिया और काला कानून रद न किया तो?

"तो हम फिर सत्याग्रह करेंगे। लेकिन सत्याग्रही अपने विरोधी पर सदा विश्वास रखकर ही चलता है। भय, अविश्वास, शंका जैसे शब्द तो उसके शब्दकोशमें होते ही नहीं" — गांधीजीने समझाया।

इतनेमें सभामें बैठा एक पठान खड़ा हुआ। वह गांधीजीका मुवक्किल था। कानूनी मामलोंमें उनसे सलाह लिया करता था। मीर आलम उसका नाम था। गांधीजीसे उसने पूछा: "लेकिन गांधी भाई, इस समझौतेके बाद भी क्या हमें दस अंगुलियोंकी छाप देनी पड़ेगी?"

"मैं तो मानता हूं कि छाप हमें देनी चाहिये।"

"आप खुद देंगे?"

"हां, दूंगा"—गांधीजीने कहा। "मैं खुद न दूं तो दूसरोंसे छाप देनेकी बात किस मुंहसे कहूं?"

अब मीर आलमके भीतरका पठान जागा। तीखी आवाजमें वह बोला: "लेकिन पहले तो आपने छाप न देनेके बारेमें अखबारोंमें खूब लिखा था। सभाओंमें खूब बोला था। इसीके लिए आप जेल भी गये थे। और आज आप अपनी बातसे मुकर कर हमें अंगुलियोंकी छाप देनेको कह रहे हैं!"

गांधीजीने शांत स्वरमें उत्तर दिया: "पहले मुझे छाप न देनेमें कौमका भला मालूम हुआ था, इसलिए मैंने छाप देनेका विरोध किया था। अब मुझे छाप देनेमें कौमका [illegible] मालूम होता है।"

"लेकिन हमने भरी सभामें खुदाकी कसम खा कर [illegible] था कि 'जानकी बाजी लगा देंगे लेकिन अंगुलियोंकी नहीं देंगे।' उसका क्या?"

"कसम हमने इसलिए खाई थी कि गोरी सरकारने [illegible] कानून हम पर जबरन् लादा था। अब अगर

सरकार झुकनेको तैयार है, तो हमें भी थोड़ा झुकना चाहिये। हमारा ध्येय तो काला कानून रद कराना ही है न?"

पठान मीर आलम बिफरा। वह गरजा: "आप कौमको भुलावेमें डाल रहे हैं, गांधी भाई। लोग कहते हैं, आपने कौमके साथ दगा किया है!" अंतिम वाक्य उसने कुछ ऐसे लहजेमें कहा, मानो गांधी भाईको उसने रंगे हाथों कौमके साथ दगा करते पकड़ लिया हो।

दगा देनेकी बातने गांधीजीके हृदयको तीरकी तरह छेद दिया। वे तिलमिला उठे। फिर भी धीरज रखकर बोले: "मैंने कौमके साथ दगा किया?"

"हां, दगा किया! आपने जनरल स्मट्ससे १५००० पौंडकी रिश्वत लेकर कौमकी आबरूको बेचा है।"

गांधीजी फिर संयत स्वरमें बोले: "तुमसे किसीने सरासर झूठ कहा है, मीर आलम। न तो मैंने सरकारसे एक कौड़ी रिश्वत खाई है, न कौमकी आबरू बेची है।"

"तब क्या इतने जिम्मेदार लोग सब झूठे और एक आप ही सच्चे?" कल तक जिन गांधी भाईको मीर आलम सच्चा और ईमानदार मानता था, उन्हींसे आज वह सचाई और ईमानदारीका सबूत मांगने पर तुल गया था।

गांधीजीने उसे और सभाके लोगोंको समझाया कि ये जिम्मेदार लोग वे ही हैं, जो भोले-भाले हिन्दुस्तानियोंसे पैसे ऐंठ कर बिना परवानेके या झूठे परवाने देकर उन्हें ट्रान्सवालमें

घुसने देते हैं। अब अगर हम मरजीसे परवाने ले लें, तो उनकी यह काली कमाई बंद हो जाय। इसीलिए वे भोले लोगोंको उलटी-सीधी बातें कह कर समझौतेके खिलाफ भड़काते हैं।

लेकिन मीर आलमके मनमें तो शंकाका भूत घुस गया था। उसने अपना फैसला सुनाया: "कुछ भी हो, हम तो छाप देकर परवाना नहीं लेंगे; और न दूसरोंको लेने देंगे। एक बात और साफ साफ जान लें, गांधी भाई। खुदाकी कसम खा कर मैं कहता हूं कि जो आदमी सबसे पहले परवाना लेने जायगा, उसे मैं जानसे मार डालूंगा!"

"तो तुम भी साफ साफ जान लो, मीर आलम, कि पहला परवाना छाप देकर मैं ही लूंगा। इसके लिए मुझे मरना पड़ा, तो तुम्हारे हाथों मरनेमें मुझे बड़ी खुशी होगी।"

अपने निश्चयके अनुसार गांधीजी कुछ साथियोंको लेकर परवाना निकलवाने सरकारी दफ्तरकी ओर चल पड़े। मीर आलम भी अपने कुछ दोस्तोंके साथ उनके पीछे पीछे चल रहा था। पठानोंके हाथोंमें लाठियां थीं। उनके चेहरे कठोर बने हुए थे। वे पठानोंके भीतरके निश्चयकी तरह क्रूर और भयावने लग रहे थे। दफ्तर दो-चार मिनटके फासले पर रह गया था कि मीर आलम गांधीजीके सामने आ गया।

हमेशाकी मीठी मुसकानके साथ गांधीजीने पूछा: "कैसे हो मीर आलम?"

"अच्छा हूं!" रुखाईसे पठान बोला।

मीर आलमके तमतमाये चेहरे और लाल-अंगारा बनी आंखोंको देख गांधीजी ताड़ गये कि पठान अपनी कसम पूरी करने आ पहुंचा है। लेकिन मौतसे डरना तो वे जानते ही नहीं थे। मौतको तो वे अपना मित्र मानते थे।

पठान जानता था कि गांधीजी कहां जा रहे हैं, फिर भी उसने पूछा: "कहां जा रहे हो?"

"सरकारी दफ्तर—छाप देकर परवाना लेने!"

"मेरी कसम याद है?"

"याद है। मैं तैयार हूं। लेकिन मेरा कदम कौमके भलेका कदम है। चलो, तुम भी मेरे साथ परवाना निकलवा लो।"

अंतिम शब्दके साथ ही गांधीजीके सिर पर मीर आलमकी एक जोरकी लाठी पड़ी। गांधीजी 'हे रा . . . म' बोलते बोलते बेहोश होकर धरती पर लुढ़क पड़े। पठानोंने और भी लाठियां उन पर बरसाईं; कस कस कर लातें भी जमाईं; और गांधीजीको मरा समझ कर भाग खड़े हुए। लेकिन आसपासके गोरोंने पठानोंको पकड़ कर पुलिसके हवाले कर दिया।

जेलमें मीर आलमको आत्मा उसे काटने लगी। वह अपने किये पर पछताने लगा। कौमके प्यारे गांधी भाई पर

घुसने देते हैं। अब अगर हम मरजीसे परवाने ले लें, तो उनकी यह काली कमाई बंद हो जाय। इसीलिए वे भोले लोगोंको उलटी-सीधी बातें कह कर समझौतेके खिलाफ भड़काते हैं।

लेकिन मीर आलमके मनमें तो शंकाका भूत घुस गया था। उसने अपना फैसला सुनाया: "कुछ भी हो, हम तो छाप देकर परवाना नहीं लेंगे; और न दूसरोंको लेने देंगे। एक बात और साफ साफ जान लें, गांधी भाई। खुदाकी कसम खा कर मैं कहता हूं कि जो आदमी सबसे पहले परवाना लेने जायगा, उसे मैं जानसे मार डालूंगा!"

"तो तुम भी साफ साफ जान लो, मीर आलम, कि पहला परवाना छाप देकर मैं ही लूंगा। इसके लिए मुझे मरना पड़ा, तो तुम्हारे हाथों मरनेमें मुझे बड़ी खुशी होगी।"

अपने निश्चयके अनुसार गांधीजी कुछ साथियोंको लेकर परवाना निकलवाने सरकारी दफ्तरकी ओर चल पड़े। मीर आलम भी अपने कुछ दोस्तोंके साथ उनके पीछे पीछे चल रहा था। पठानोंके हाथोंमें लाठियां थीं। उनके चेहरे कठोर बने हुए थे। वे पठानोंके भीतरके निश्चयकी तरह क्रूर और भयावने लग रहे थे। दफ्तर दो-चार मिनटके फासले पर रह गया था कि मीर आलम गांधीजीके सामने आ गया।

हमेशाकी मीठी मुसकानके साथ गांधीजीने पूछा: "कैसे हो मीर आलम?"

"अच्छा हूं!" रुखाईसे पठान बोला ।

मीर आलमके तमतमाये चेहरे और लाल-अंगारा बनी आंखोंको देख गांधीजी ताड़ गये कि पठान अपनी कसम पूरी करने आ पहुंचा है । लेकिन मौतसे डरना तो वे जानते ही नहीं थे । मौतको तो वे अपना मित्र मानते थे ।

पठान जानता था कि गांधीजी कहां जा रहे हैं, फिर भी उसने पूछा : "कहां जा रहे हो?"

"सरकारी दफ्तर—छाप देकर परवाना लेने!"

"मेरी कसम याद है?"

"याद है । मैं तैयार हूं । लेकिन मेरा कदम कौमके भलेका कदम है । चलो, तुम भी मेरे साथ परवाना निकलवा लो ।"

अंतिम शब्दके साथ ही गांधीजीके सिर पर मीर आलमकी एक जोरकी लाठी पड़ी । गांधीजी 'हे रा . . . म' बोलते बोलते बेहोश होकर धरती पर लुढ़क पड़े । पठानोंने और भी लाठियां उन पर बरसाईं; कस कस कर लातें भी जमाईं; और गांधीजीको मरा समझ कर भाग खड़े हुए । लेकिन आसपासके गोरोंने पठानोंको पकड़ कर पुलिसके हवाले कर दिया ।

जेलमें मीर आलमको आत्मा उसे काटने लगी । वह अपने किये पर पछताने लगा । कौमके प्यारे गांधी भाई पर

हमला करके उसने कौमके साथ गद्दारी की। हिन्दुस्तानियोंकी पसीनेकी कमाईसे अपनी जेवें भरनेवाले झूठे लोगोंके वहकावेमें आकर उसने गांधी भाईकी जान लेनेका कमीना काम कर डाला। काश, हमारे गांधी भाईको खुदाने वचा लिया हो!

जेलमें उसके कुछ साथी मिलने आये तव मीर आलम उन्हें उदास और अनमना दिखाई दिया। वे कुछ बोलें, कुछ पूछें, इसके पहले ही मीर आलमने कांपती आवाजमें पूछा: "हमारे गांधी भाई कैसे हैं?"

साथियोंने वताया कि अब वे अच्छे हैं। उनके सिर और पसलियोंमें गहरी चोट आई थी। होंठ फट गये थे, इसलिए टांके लगाने पड़े थे।

रुंधे कंठसे पठान वोला: "रहम है उस खुदाका। गुस्सेमें हम लोगोंसे शैतानका काम हो गया। क्या करें?"

दूसरे कैदी पठानने पूछा: "गांधी भाई तो हमसे अब नफरत करने लगे होंगे?"

"नहीं भाई, नफरत करना तो वे किसीसे जानते ही नहीं। उनके दिलमें तो सभी लोगोंके लिए प्यारका सागर लहराया करता है।"

"लेकिन हम तो उनकी जानके गाहक बन गये थे!" मीर आलम फुसफुसाया।

"फिर भी होशमें आते ही गांधी भाईने सरकारको तार करवाया था कि इन पठानोंके लिए मेरे मनमें जरा भी गुस्सा नहीं है। वे बेकसूर हैं। उन्हें सजा न दी जाय।"

"क्या इसीलिए पुलिसने पहली बार पकड़ कर हमें छोड़ दिया था?" मीर आलमने मुलाकातियोंसे पूछा।

"ऐसा ही था।"

"तब दुबारा हमें किसने पकड़वाया?"

"गोरे लोगोंने।"

"ऐ खुदा, तेरे फरिश्ते गांधीकी हमने तो जान ही ले डाली थी। हम पर रहम कर; हमें माफ कर!" कहते कहते मीर आलमकी आंखोंसे दो बूंद धरती पर चू पड़ीं।

जनरल स्मट्सकी बातका भरोसा करके गांधीजी और कौमके दूसरे नेताओंने सरकारसे समझौता किया था। और उस समझौतेको मानकर हिन्दुस्तानियोंने अपनी इच्छासे परवाने भी ले लिये थे। लेकिन गोरी सरकारने अपना वचन नहीं पाला—काला कानून रद नहीं किया।

गांधीजीने फिर सत्याग्रहका शंख फूंका। हिन्दुस्तानी कौमने फिर अपने गांधी भाईकी नेतागिरीमें गोरी सरकारको जबरदस्त चुनौती दी: "सरकार काला कानून रद नहीं करेगी, तो हम खुली सभामें मरजीसे लिये हुए परवानोंकी होली जलायेंगे!"

लेकिन सत्ता और पशुबलके मदमें माती हुई सरकार चुनौतीकी परवाह क्यों करने लगी? अंतमें १२ जुलाई, १९०८ के दिन जोहानिसबर्गमें फिर कौमकी एक बड़ी सभा हुई। मंच पर रखी एक बड़ी कड़ाहीमें दो हजारसे ऊपर परवाने डाले गये। ऊपरसे घासलेट उंड़ेला गया। गांधी भाईने जब परवानोंको दियासलाई लगाई, तो सभामें बैठे हजारों लोगोंने तालियोंकी गड़गड़ाहटसे वातावरणको गूंजा दिया। देखते ही देखते आग भड़क उठी। लपटें ऊंची और अधिक ऊंची उठने लगीं और परवाने जलकर राख होने लगे।

मीर आलम और उसके साथी तब तक जेलसे छूट चुके थे। वह भी साथियोंको लेकर इस सभामें आया था। परवाने जल रहे थे उस बीच वह उठकर गांधी भाईके सामने आया। पहले उसने सभासे अपनी काली करतूतके लिए माफी मांगी। फिर गांधीजीसे उसने कहा: "मुझे माफ कर दो, गांधी भाई। उस दिन मैं खुदाको भूलकर शैतान बन गया था। मेरा यह पुराना परवाना भी तुम जला दो और मुझे अपनी लड़ाईका सिपाही बना लो।"

गांधीजीने मीर आलमका एक हाथ अपने दोनों हाथोंके बीच प्यारसे दबाया, फिर उसे गले लगाया और कहा: "मेरे मनमें तो तुम्हारे लिए कभी गुस्सा और नफरत थी ही नहीं, मीर आलम। तुम आज भी मेरे उतने ही प्यारे भाई हो जितने पहले थे।"

"मैं सब जानता हूं गांधी भाई, मैं सब जानता हूं। तुम तो दुनियाके इन्सानों पर प्यार बरसानेके लिए ही पैदा हुए हो।"

मीर आलम छलछलाई आखोंसे एकटक अपने गांधी भाईको देखता रहा। और गांधी भाई अपनी हंसती आंखों और हंसते होठोंसे झरते प्यारमें मीर आलमको नहलाते रहे।

३

और शांतिनिकेतन उबर गया

गांधीजी और गुरुदेव टागोरकी मित्रता अतिशय मधुर, मीठी और सुखद थी।

राष्ट्रके विविध कार्योंमें प्राणपणसे जुटे रहने पर भी गांधीजी गुरुदेवके स्वास्थ्य और सुखकी तथा उनकी प्रिय शिक्षण-संस्था शांतिनिकेतनके प्रसन्न विकासकी कामना प्रभुसे किया करते थे।

गुरुदेव साहित्य-देवताकी आराधना और शांतिनिकेतनकी प्रगतिके लिए भगीरथ प्रयत्न करते करते भी गांधीजीके कुशल-क्षेमकी और उनके स्वातंत्र्य-संग्रामोंकी विजयकी प्रार्थना अपने सरजनहारसे किया करते थे।

शांतिनिकेतन गुरुदेवकी भव्य कृति थी। शांतिनिकेतन गुरुदेवका प्राण था। उसके विकासके लिए गुरुदेवने अपना तन-मन-धन सब निछावर कर दिया था। शांतिनिकेतनको वे

भारतकी आदर्श शिक्षण-संस्था बनानेके सुनहले सपने देखा करते थे । ऐसी आदर्श संस्था — जहां भारतके कोने कोनेसे, एशियाके हर देश और हर क्षेत्रसे और समूचे संसारसे युवक-युवतियां आयें । वहांके स्वतंत्र, उन्मुक्त, उदार और स्नेहमय वातावरणमें साहित्य, संगीत और कलाकी शिक्षा ग्रहण करें । और शांतिनिकेतनके पुनीत वातावरणमें गूंजते और लहराते रहनेवाले प्रेम, मानवता और शांतिके संदेशको अपने अपने प्रदेशोंमें ले जाकर फैलायें ।

आखिर गुरुदेवके त्याग और तपस्याने शांतिनिकेतनको वह रूप दिया, जो वे उसे देना चाहते थे । वह दिन दूना रात चौगुना बढ़ने लगा । उसकी ख्याति केवल भारतके सुदूर भागोंमें ही नहीं, बल्कि संसारके विभिन्न देशोंमें भी फैलने लगी ।

लेकिन कभी कभी शांतिनिकेतन पर विपत्तिके बादल भी मंडराने लगते थे । एक बार १९३६-३७ के अरसेमें वह आर्थिक संकटमें फंस गया । उस पर ६० हजारका कर्ज हो गया । गुरुदेव चिन्तित हो उठे । उन्होंने खूब सोचा, खूब विचारा । अन्तमें उन्होंने यह फैसला किया कि संस्थाको इस संकटको दूर करनेके लिए वे किसी सेठ-साहूकार और उद्योगपतिके सामने हाथ नहीं फैलायेंगे, बल्कि भारतकी जनतासे सीधी मदद लेंगे । इसके लिए वे शांतिनिकेतनके कलाकारों और विद्यार्थियोंकी नाट्यकला लोगोंके सामने प्रस्तुत करेंगे और लोग उसके लिए जो पैसा देंगे उसीसे संस्थाका कर्ज चुकायेंगे ।

और एक दिन गुरुदेवने अपने इस निर्णयसे आश्रमके साथियोंको चौंका दिया: "मैं शांतिनिकेतनके कलाकारों और विद्यार्थियोंके साथ सारे भारतमें घूमूंगा और अपने नाटकोंका अभिनय करके शांतिनिकेतनके लिए धन जुटाऊंगा।"

"लेकिन इस वृद्धावस्थामें आप यात्रा और कामका इतना बोझ कैसे सहेंगे?" एक साथीने शंका उठाई।

दूसरे दिन बोले: "गुरुदेव, आपके जैसे विश्व-विख्यात कवि रंगमंच पर लोगोंके सामने नाटक खेलेंगे? इससे आपकी प्रतिष्ठाको बड़ा धक्का पहुंचेगा।"

"लेकिन शांतिनिकेतनकी हस्ती जब खतरेमें पड़ गई हो, तब मैं प्रतिष्ठाके झूठे ख्यालको पकड़ कर कैसे बैठा रहूं? और भारतमें या बाहर मेरी कोई प्रतिष्ठा हो भी, तो उसे धक्का क्यों लगना चाहिये? मैं किसीसे भीख तो मांगूंगा नहीं। लोग शांतिनिकेतनको बचाना चाहेंगे, तो हमारी कलाकी कदर करके पैसा देंगे।" गुरुदेवकी वाणी बहती रही। साथी सब मौन बने सुनते रहे।

एक और साथीने धीमे स्वरमें सुझाया: "क्या हम संस्थाके खर्चेमें कहीं काट-छांट करके बजटको समतोल नहीं बना सकते?"

गुरुदेवने मनकी व्यथा सबके सामने रखी। काट-छांट करनेके लिये आखिर कहां की जाय? क्या विज्ञान और शिल्पकार अध्यापकोंकी संस्थाओंमें कमी करके उन्हें और

उनके परिवारको भूखों मारा जाय? ऐसा किया भी जाय तो तनके भूखे और मनके असंतुष्ट अध्यापक शिक्षाके काममें अपनी आत्मा कैसे उंड़ेल सकेंगे? तब क्या विद्यार्थियोंके खानपानमें काट-कसर करके उनका स्वास्थ्य बिगाड़ा जाय? यह पाप हम कैसे करें? उनके मां-बापने हमारा विश्वास करके इतनी दूर उन्हें भेजा है और मान लिया है कि हम उनके सुख-दुःखका ध्यान रखेंगे। तब हम उनके साथ विश्वास-घात कैसे करें?

अंतमें अपने निश्चयके अनुसार गुरुदेवकी वह कलायात्रा आरंभ हुई। और वे भारतकी राजधानी दिल्ली पहुंचे। दिल्लीकी जनताको मालूम हुआ कि गुरुदेव शांतिनिकेतनके कलाकारोंके साथ रंगमंच पर अपनी नाटिका 'चित्रांगदा' का अभिनय करेंगे। उसने पत्र-पुष्पसे गुरुदेवकी झोली छलका देनेका निर्णय किया।

संयोगकी बात कि उन्हीं दिनों गांधीजी किसी कामसे दिल्ली आये हुए थे। गुरुदेवका संकल्प जानकर उनका मन वेदनासे भर गया। गुरुदेवको शांतिनिकेतनका कर्ज मिटानेके लिए रंगमंच पर नाटक खेलना पड़े, यह हमारे देशके लिए कलंककी बात होगी।—उनका मन बोला।

अपने निजी सचिव महादेव देसाईको बात-बातमें उन्होंने बताया: "तुमने सुना महादेव, शांतिनिकेतनको बचानेके लिए गुरुदेवने अपनी सारी प्रतिष्ठाको दाव पर लगा दिया है।"

महादेवभाई: "कोई उपाय नहीं हो सकता गुरुदेवकी प्रतिष्ठाको बचानेका?"

"ईश्वर चाहेगा तो कोई उपाय सुझायेगा।"

उस दिन बार बार गांधीजीके मनमें गुरुदेव और उनके शांतिनिकेतनके ही विचार उठते रहे। चाहे तो कलकत्तेका कोई एक ही धनपति इतने रुपये देकर गुरुदेवकी चिन्ता दूर कर सकता है। परन्तु हमारे इन धनपतियोंको राष्ट्रकी परवाह ही कहां है? अपने ऐश-आरामके लिए वे पानीकी तरह पैसा बहा देंगे। तीर्थोंमें सदाव्रत खोल कर हट्टे-कट्टे साधुओंको भोजन करायेंगे और देशमें निकम्मे आलसियोंकी फौज बढ़ायेंगे। धर्मके नाम पर चलते ढोंग और पाखंडका पोषण करनेके लिए लाखोंका दान दे डालेंगे। परन्तु शांतिनिकेतन जैसी संस्थाओंकी मदद नहीं करेंगे।

इसी तरहके विचारोंमें डूबते-उतराते गांधीजी रात गहरी नींदमें सो गये। और सुबह फूलकी तरह हलके मनसे राम राम करते जागे। प्रार्थनाके बाद उनके भीतरके ईश्वरने उन्हें गुरुदेवका संकट दूर करनेका उपाय बता दिया।

उन्होंने दिल्ली-निवासी अपने उद्योगपति मित्र श्री घनश्यामदास बिड़लाको इस आशयका पत्र लिखा:

प्रिय भाई बिड़लाजी,

आपके धनसे देशमें जनसेवाकी अनेक अच्छी संस्थायें चल रही हैं। आज मैं गुरुदेवके शांतिनिकेतनका नाम उनके साथ जोड़ता हूं। उसका आर्थिक संकट आपको दूर करना

ही है । गुरुदेव रंगमंच पर इस बुढ़ापेमें लोगोंके सामने नाटक खेलें, इसके पहले ६० हजारका गुप्त दान उनके पास पहुंच जाय तो बड़ा काम हो जाय । इस तरह उनके स्वमानकी भी रक्षा होगी और शांतिनिकेतन भी संकटसे उबर जायगा ।

बापूके आशीर्वाद

उधर गुरुदेवके पास गांधीजीने महादेव देसाईके साथ यह सन्देशा भेजा: "आपके जैसा महापुरुष रंगमंच पर लोगोंके सामने अभिनयके लिए खड़ा हो, तो हिन्दका सिर दुनियाके सामने शरमसे झुक जायगा । इस शरमसे आप उसे बचा लीजिये । प्रभु चाहेगा तो शांतिनिकेतनकी मुश्किल दूर हो जायगी । आप शांतिनिकेतन लौट जानेकी कृपा करें ।"

बिड़लाजीने गांधीजीकी बात कब टाली जो इस बार टालते? ६० हजारका गुप्त दान भेजकर उन्होंने लिखा: "शांतिनिकेतनकी उन्नति और प्रगति चाहनेवाले एक भारतीयकी नम्र भेंट।"

गुरुदेवके कवि-हृदयने इसके पीछेका सारा रहस्य समझ लिया । आंसुओंसे भीगी उनकी नजरके सामने गांधीजीका मंद मंद मुसकाता चेहरा तैरने लगा !

४

चार करोड़का दान!

१९४७ का साल।

मार्चकी ७ तारीख।

पटना शहरका बाहरी भाग।

गंगा-तटकी ओर ले जानेवाला मार्ग।

एक अन्धा भिखारी अरुणोदयसे पहले ही उस मार्गके मोड़ पर आकर जम गया है। एकतारे पर गांधीजीको प्रिय रामधुन गुनगुना रहा है:

> रघुपति राघव राजा राम।
> पतित-पावन सीता राम।
> ईश्वर अल्ला तेरे नाम।
> सबको सन्मति दे भगवान!

आसपासका वातावरण अतिशय प्रसन्न और निर्मल है। रोम-रोममें प्राणोंका संचार करनेवाली ताजी ठंडी हवा बह रही है। वृक्षों, लताओं और कुंजों पर पक्षी मीठे गीत गा रहे हैं।

कुदरतका यह सारा उल्लास भिखारीके चेहरे पर जैसे उभर आया है। उसे गांधी बापूके दर्शन करने हैं — मनसे

आंखें खोलकर। उसे गांधी बापूके हाथोंमें कुछ देना है—देशके कल्याणके लिए।

लोग कहते हैं, गांधी बापू नोआखालीसे बिहार आये हैं—बिहारकी जनताको समझाने कि नोआखालीके गुमराह मुसलमानोंने अपने हिन्दू पड़ोसियोंके साथ जो हैवानियत की है, उसका बदला बिहारको इन्सानियतसे चुकाना है। जिन हिन्दुओंने बिहारके मुट्ठीभर मुसलमानोंको सताया है, उन पर तरह तरहके जुल्म किये हैं, उन हिन्दुओंने बिहारके उज्ज्वल नाम पर कलंक लगाया है। बुद्ध और महावीरने बिहारको क्या सिखाया है? उन्होंने सिखाया है—"वैरका बदला प्रेमसे लो। हिंसाका बदला अहिंसासे लो।" इसलिए बिहारके मुसलमानोंको अपने भाई-बहन समझो। उन्हें गले लगाओ। उन पर प्रेम बरसाओ।

भिखारी सूरदासको लगता है कि गांधी बापू भगवानकी बात कहते हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों उस भगवानके बालक हैं। तब भाई और भाईमें वैर कैसा? दुश्मनी कैसी? मार-काट और लूट-पाट कैसी? लेकिन उसके बिहारने मुसलमान भाइयों और बहनोंके साथ जो अन्याय किया है, उन पर जो अत्याचार किया है, उसका प्रायश्चित्त वह भी करेगा। वह भी तो बुद्ध, महावीर और गांधीके बनाये बिहारका हिन्दू है!

गांधीजीके ही विचारोंमें डूबा-डूबा सूरदास बैठा था कि गांधीजी आये टहलते-टहलते अपनी पोती मनु गांधीके

साथ। उसकी आत्मा पुकार उठी: "गांधी बापू आ गये, सूरदास!"

"बापूजी!" भिखारीने पुकारा।

गांधीजी उसके निकट आये, रुके, बोले: "क्या है, भाई?"

"बापू, मुझे मुस्लिम सहायता-कोषमें दान देना है। कलका खाना छोड़कर मैंने भीखके चार आने बचाये हैं। आप लेंगे मेरा यह दान?"

"जरूर लूंगा। गरीबका पाई-पैसा मेरी नजरमें अमीरके रुपयोंसे ज्यादा कीमती है। तुम्हारे जैसे हिन्दू बिहारमें हों तब तक बुद्ध और महावीरका बिहार मर नहीं सकता। अहिंसा, करुणा और प्रेमकी ज्योति बिहारमें बुझ नहीं सकती।"

भिखारी गद्‌गद हो गया। उसकी आंखें छलछला आईं। उसने फटी धोतीकी आंटमें जतनसे बंधे चार आने निकाले। चार आने — उसकी दिन भरकी कमाई, जो उसने पेट पर पट्टी बांधकर बचाई थी! अपनी यह न-कुछ-सी भेंट भिखारीने गांधीजीके हाथों पर रख दी और खुशीसे कांपते हाथोंसे उनके चरण छू लिये।

गांधीजीका चेहरा प्रसन्नतासे चमक उठा। सूरदाससे उन्होंने कहा: "तुम्हारे ये चार आने मेरे लिए चार करोड़से भी ज्यादा कीमत रखते हैं! तुम बिहारके सच्चे प्रतिनिधि हो।"

"क्यों नहीं आऊंगा? वहां जाना तो मेरे लिए स्वर्गमें जाने जैसा होगा, बापू।"

"तो यह स्वयंसेवक तुम्हें ले जायेगा। वहां जाकर कातना सीखना और चरखा चलाना। दूसरा जो काम तुमसे हो सके वह भी करना।"

"आपकी इस दयाको मैं जनम भर न भूलूंगा।" कहते-कहते सूरदासकी आंखें बरस पड़ीं।

गांधी बापूने प्यारसे भिखारीकी पीठ थपथपाई और एक तकली उसे भेंट की। गांधी बापूका मीठा प्यार और तकलीकी अनमोल भेंट पाकर रास्तेका भिखारी मानो धनकुबेर बन गया!

गंगा-तटकी सैरसे लौटकर गांधीजीने पैर धुलाते-धुलाते अपनी पोती मनु गांधीसे कहा — "देखा तूने, अहिंसा कैसे काम करती है? एक अंधे भिखारीने उपवास करके मुस्लिम सहायता-कोषमें चार आने दिये! यह है बिहारकी जनता!! यह है सच्चा दान!!!"

कहना: "जनसेवाके कितने ही महत्त्वपूर्ण काम हमारे पास करनेको पड़े हैं। दूसरोंके जूठे बरतन मांजनेमें हम अपना समय कैसे बरबाद कर सकते हैं?"

सब भीतर ही भीतर घुटते रहे। पर बापूके पास जाकर विरोध करनेकी हिम्मत किसीको नहीं हुई।

बलवन्तसिंहको बापूने समझाया: "बलवन्त, परेशान न होना। मैंने खूब सोचकर ही यह बात कही है। दूसरोंके जूठे बरतन मांजनेसे मगनवाड़ीके सदस्योंमें प्रेमभाव पैदा होगा और बढ़ेगा। दूसरोंके जूठे बरतन मांजनेके लिए हमारे मनमें जो घृणा रहती है वह दूर होगी। सब लोगोंका इस काममें लगनेवाला कीमती समय भी बचेगा, जिसे वे दूसरे उपयोगी कामोंमें खर्च कर सकेंगे।"

बलवन्तसिंह धीमी आवाजमें बोले: "लेकिन बापू, सब लोगोंने दिलसे इस काममें साथ नहीं दिया, तो रसोईघरकी व्यवस्थामें बड़ी कठिनाई खड़ी हो जायगी।"

"नहीं होगी। कठिनाईको दूर करना ही तो मनुष्यका काम है। अच्छा चलो, सबसे पहले मैं और बा इस कामका श्रीगणेश करेंगे।"

बलवन्तसिंह बेचारे घबरा गये। बापू और बा हम लोगोंके जूठे बरतन मांजेंगे! इस तुच्छ काममें बापू अपना कीमती समय कैसे बरबाद कर सकते हैं?

लेकिन बापू तो अपनी बात पर डटे रहे। बा को अपने साथ लेकर वे बरतन मांजनेकी जगह जा बैठे और बोले:

बापूके चेहरे पर पसीनेकी बूंदें निकल आईं देख बा चिढ़कर बोलीं : "लेकिन आप इस फिजूलके काममें अपनी शक्ति क्यों बरबाद कर रहे हैं? यह काम हम स्त्रियोंके लिए छोड़ दीजिये और जाकर अपने जरूरी काम कीजिये।"

बापूने धीरेसे समझाया : "जीवनके लिए जरूरी सब काम एकसा महत्त्व रखते हैं, बा। न कोई छोटा है, न कोई बड़ा। जूठे बरतनोंकी सफाई मेरी नजरमें उतना ही बड़ा और उतना ही जरूरी काम है, जितना वाइसरॉयके साथ राजनीतिकी चर्चा करना या 'हरिजन' के लिए महत्त्वपूर्ण लेख लिखना।"

"अच्छा, बाबा, अच्छा! दलीलमें मैं अपढ़ औरत आपसे जीत नहीं सकती। पर इतना मैं जरूर समझती हूं कि देशसेवाके बड़े कामोंके लिए आपको अपनी शक्ति बचानी चाहिये।"

"लेकिन बा, तुम ही कहो, बारी बारीसे जूठे बरतन मांजनेके नियमका यदि मैं खुद पालन न करूं, तो दूसरोंसे उसका पालन कैसे कराऊं?"

बा चुपचाप बरतन मांजती रहीं। उन्होंने समझ लिया कि बापू अपनी बात छोड़ेंगे नहीं।

कुछ क्षण बाद बापूने बलवन्तसिंहसे कहा : "बलवन्त, मैं आश्रममें बड़े और छोटे कामका तथा स्त्री और पुरुषके कामका भेद मिटा देना चाहता हूं। इसीलिए रसोईघरकी व्यवस्था किसी स्त्रीको न सौंपकर मैंने तुम्हें सौंपी है।"

"सब कोई अपने-अपने जूठे बरतन यहां रख कर चले जायें। आज इन्हें साफ करनेकी बारी मेरी और बा की है।"

मगनवाड़ीके सब निवासी भारी धर्म-संकटमें फंस गये। उनका मन कहता था कि बा और बापूसे जूठे बरतन नहीं मंजवाये जा सकते। लेकिन बापू कहते थे कि आज तो मैं और बा ही सबके जूठे बरतन मांजेंगे। अब क्या हो?

अन्तमें बहुत प्रार्थना करने पर बापूने व्यवस्थापक बलवन्तसिंहकी मदद लेना स्वीकार किया।

और, देखते ही देखते बापू और बा के सामने जूठी थालियों, जूठी कटोरियों और जूठे लोटे-गिलासोंका ढेर लग गया। बापू बरतन मांजनेमें वैसे ही तल्लीन हो गये जैसे वे देशके बड़ेसे बड़े कार्यमें तल्लीन हो जाते थे। एक हाथमें जूठा बरतन, दूसरे हाथमें नारियलका मिट्टीसे सना कूचा! वह दृश्य देखते ही बनता था। बापू अपनी पूरी शक्ति लगाकर बरतनको कूचेसे घिसते थे, जिससे वह कांचकी तरह चमचमाने लगे। किसी काममें बेगार टालना तो उन्हें पसन्द ही नहीं था। कामको पूर्णताकी सीमा तक पहुंचाये बिना उन्हें सन्तोष नहीं होता था।

बरतन मांजते-मांजते बापू बा से विनोद भी करते जाते थे: "देखा बा, मेरा बरतन? कैसा चमकने लगा है?"

"बस देखा, देखा। जिन्दगीमें जूठे बरतन क्या मांजे हैं, जो चमकेंगे?" बा ने उत्तर दिया।

बापूने हंसते-हंसते कहा: "पर आज तो चमक रहा है न? मेरी थाली तुम्हारी थालीसे ज्यादा उजली निकली है। चाहो तो बलवन्तसे फैसला करा लो।"

बापूके चेहरे पर पसीनेकी बूंदें निकल आई देख बा चिढ़कर बोलीं: "लेकिन आप इस फिजूलके काममें अपनी शक्ति क्यों बरबाद कर रहे हैं? यह काम हम स्त्रियोंके लिए छोड़ दीजिये और जाकर अपने जरूरी काम कीजिये।"

बापूने धीरेसे समझाया: "जीवनके लिए जरूरी सब काम एकसा महत्त्व रखते हैं, बा। न कोई छोटा है, न कोई बड़ा। जूठे बरतनोंकी सफाई मेरी नजरमें उतना ही बड़ा और उतना ही जरूरी काम है, जितना वाइसरॉयके साथ राजनीतिकी चर्चा करना या 'हरिजन' के लिए महत्त्वपूर्ण लेख लिखना।"

"अच्छा, बाबा, अच्छा! दलीलमें मैं अपढ़ औरत आपसे जीत नहीं सकती। पर इतना मैं जरूर समझती हूं कि देशसेवाके बड़े कामोंके लिए आपको अपनी शक्ति बचानी चाहिये।"

"लेकिन बा, तुम ही कहो, बारी बारीसे जूठे बरतन मांजनेके नियमका यदि मैं खुद पालन न करूं, तो दूसरोंसे उसका पालन कैसे कराऊं?"

बा चुपचाप बरतन मांजती रहीं। उन्होंने समझ लिया कि बापू अपनी बात छोड़ेंगे नहीं।

कुछ क्षण बाद बापूने बलवन्तसिंहसे कहा: "बलवन्त, मैं आश्रममें बड़े और छोटे कामका तथा स्त्री और पुरुषके कामका भेद मिटा देना चाहता हूं। इसीलिए रसोईघरकी व्यवस्था किसी स्त्रीको न सौंपकर मैंने तुम्हें सौंपी है।"

"लेकिन वापू, जिसका काम वही करे तो काम ज्यादा अच्छा होता है।"

"ऐसी कोई वात नहीं है। हर आदमीको हर काम अच्छी तरहसे करना सीखना चाहिये। पुरुष यदि खाना खाते हैं, तो उन्हें खाना वनाना भी आना चाहिये। स्त्रियोंकी तरह उन्हें रसोईघर चलाना और जूठे बरतन मांजना भी आना चाहिये।"

कुछ क्षण रुककर वे फिर वोले: "आश्रममें तो हमें स्त्री और पुरुषके कामोंका भेद मिटा ही देना है। इससे दोनोंके जीवनमें अधिक समानता आयेगी। दोनोंके हृदयमें एक-दूसरेके प्रति प्रेम, सद्भावना और सहानुभूति अधिक बढ़ेगी और धीरे-धीरे दोनोंके वीच चलनेवाला समान अधिकारका झगड़ा भी मिट जायगा।"

वलवन्तसिंह हाथका वरतन मांजते जाते और श्रद्धा-भक्तिसे गद्गद होकर वापूका उपदेश सुनते जाते। सुनते-सुनते उनके मनमें महाभारतमें पढ़ा हुआ महाराज युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञका चित्र खड़ा हो गया। द्वापरके महान युग-पुरुष श्रीकृष्णका पवित्र स्मरण हुआ, जिन्होंने राजसूय यज्ञमें आये हुए अतिथियोंकी जूठी पत्तलें उठाई थीं।

और उन्होंने मन ही मन अपने सामने भगवाड़ीके सदस्योंके जूठे वरतन मांजनेमें प्रसन्नता अनुभव करते हुए वीसवीं सदीके युग-पुरुष गांधीके चरणोंमें श्रद्धासे अपना मस्तक झुका दिया।

६

कैसे हैं ये बापू?

"तो मैं भी सेगांवके सवर्ण नाईसे अपनी हजामत नहीं बनवाऊंगा!!"

बापूके ये शब्द सुनकर गोविन्द आंखें फैलाकर उनकी ओर देखता ही रह गया। उसके जैसे एक हरिजन छोकरेके लिए बापू सेगांवके सवर्णोंके नाईसे हजामत बनाना छोड़ देंगे? हरिजन तो भले बापूका दिया हुआ नाम है। असलमें तो वह एक महारका लड़का है, जिसे सवर्ण हिन्दू नफरतकी नजरसे देखते हैं, जिससे सवर्ण हिन्दू महामारीकी तरह दूर भागते हैं। उसे पता होता कि वर्धा जानेकी इजाजत मांगनेका यह नतीजा होगा, तो वह बापूसे पूछता ही नहीं। लेकिन अब तो बापूके मुंहसे पत्थरकी लकीर जैसी बात निकल गई! अब क्या हो सकता है?

सन् १९३६ के जून-जुलाईका महीना रहा होगा। बापू मगनवाड़ीसे आकर सेवाग्राम आश्रममें नये ही नये बसे थे। मीरा बहनने सेगांवके गोविन्द नामक एक हरिजन लड़केको सिखाकर बापूकी सेवाके लिए तैयार किया था। बापूके खाने-पीने, सोने-बैठनेकी सारी व्यवस्था वही करता था। गोविन्द बापूकी सेवाको अपने जीवनका अनोखा सौभाग्य मानता था।

अन्दर ही अन्दर उसका मन बोला करता था — "बापू जैसे सन्तकी सेवा करनेसे अगले जनममें वह भी ऊंची जातका हिन्दू बन जाय तो कितना अच्छा हो!"

एक दिन उसने बापूसे पूछा: "थोड़े समयके लिए मैं वर्धा हो आऊं, बापूजी?"

"किसलिए?"

"मेरे सिरके बाल बहुत बढ़ गये हैं। वहां जाकर मैं अपनी हजामत बनवाऊंगा।" गोविन्दने उत्तर दिया।

"क्या सेगांवमें नाई नहीं हैं?" बापूने पूछा।

"नाई तो हैं, पर वे ऊंची जातके हिन्दुओंके हैं।"

"वे तेरी हजामत नहीं बना देते?"

"नहीं, वे हरिजनोंकी हजामत नहीं बनाते। सवर्ण हिन्दुओंकी तरह वे भी हमसे नफरत करते हैं।"

अन्तिम वाक्य पूरा करते-करते गोविन्दके चेहरे पर ऐसी विवशता उभर आई, मानो वह भगवानसे पूछ रहा हो: "भगवान, मैंने ऐसा कौनसा पाप किया है, जिससे मनुष्य होने पर भी मुझे मनुष्यकी नफरतका शिकार होना पड़ता है, जिसके कारण मेरे ही जैसे मनुष्य मुझसे दूर भागते हैं — मेरी परछाईंसे भी बचते हैं?"

बापूने जरा और गहराईमें उतर कर पूछा: "तो वर्धाके सवर्ण नाई हरिजनोंकी हजामत बना देते हैं?"

"नहीं, जात बता दें तब तो वे भी नहीं बनाते।"

"तो तू जात छिपाकर बनवाता है?"

"नहीं, बापूजी! जात छिपाकर मैं अपना धरम क्यों डुबाऊं? पिछले जनममें जो पाप किये हैं, उनकी सजा तो इस जनममें महार बनकर भोग रहा हूं। अब किसी सवर्ण नाईका धन्धा तोड़नेका पाप क्यों सिर पर लूं?"

गोविन्दकी बात सुनकर बापू गहरे विचारोंमें डूब गये। वर्तमानकी सीमाको भेदकर भूतकालमें पहुंच गये। दक्षिण अफ्रीकाके जीवनके कटु अनुभव चलचित्रोंकी तरह उनकी आंखोंके सामने तैरने लगे।

वैरिस्टर गांधी डरबनसे चार्ल्सटाउन जा रहे हैं। रेलके प्रथम श्रेणीके डिब्बेमें बैठे हैं। मेरित्सबर्ग नामके स्टेशन पर एक गोरा अफसर उनके डिब्बेमें प्रवेश करता है। गांधीजीसे कहता है: "तुम यहां नहीं बैठ सकते। यह डिब्बा गोरोंके लिए है। पहले दरजेका टिकिट होने पर भी तुम्हें कालोंके आखिरी डिब्बेमें जाना होगा।" गांधीजी कहते हैं: "मैं उस डिब्बेमें नहीं जाऊंगा। इसी डिब्बेमें यात्रा करूंगा।" अफसर एक सिपाहीको बुलाता है। सिपाही धक्का मारकर गांधीजीको नीचे उतार देता है। सामान प्लेटफार्म पर फेंक देता है। गांधीजी लाचार बने बैठे रहते हैं। गाड़ी सीटी देकर आगे बढ़ जाती है!

दूसरा चित्र तेजीसे आंखोंके सामने आता है। वैरिस्टर गांधी घूमने निकले हैं। दक्षिण अफ्रीकाके प्रेसिडेन्ट क्रूगरके भवनके सामने फुटपाथ पर चल रहे हैं। भवनके दरवाजे पर गोरा सन्तरी कन्धे पर बन्दूक रखकर पहरा दे रहा है।

काले बैरिस्टरको फुटपाथ पर चलते देखकर गोरे सन्तरीकी भौंहें तन जाती हैं, नाक फूल उठती है। 'काले आदमीकी यह हिम्मत!' उसका मन उबलने लगता है। वह गांधीजीको एक जोरका धक्का मारता है, ऊपरसे एक लात जमाता है और फुटपाथसे नीचे उतार देता है। गांधीजी गमगीन हो जाते हैं!

तीसरा चित्र इनसे भी ज्यादा स्पष्ट हो उठता है। बैरिस्टर गांधी प्रिटोरियामें वकालत करते हैं। एक दिन एक अंग्रेज नाईकी दुकान पर बाल कटवाने जाते हैं। नाई ऊपरसे नीचे तक काली चमड़ीवाले गांधीको तीखी नजरसे घूरता है, मानो कच्चा खा जायेगा! फिर गरजता है — "तू मेरी दुकान पर कैसे चढ़ा? तुझे पता नहीं मैं गोरोंका नाई हूं, कालोंका नहीं? चल, नीचे उतर।" बैरिस्टर गांधी अपमानका कड़वा घूंट पीकर सड़क पर उतर आते हैं!

उनकी आत्मा कह उठती है — 'दक्षिण अफ्रीकाके गोरे काले हिन्दुस्तानियोंके साथ अपमान और तिरस्कारका जो बरताव करते हैं वह उस अत्याचारका ही फल है, जो हिन्दुस्तानमें सवर्ण हिन्दू अपने अछूतोंके साथ करते हैं। . . . हम सवर्णोंके नाई भी कहां अछूतोंके बाल काटते हैं?'

"तो मैं वर्धा हो आऊं, बापूजी?" गोविन्दने दुबारा पूछा।

गोविन्दके इस प्रश्नके साथ एकाएक बापूजीकी विचार-धारा टूटती है। वे फिर सेवाग्राम आश्रमके वातावरणमें लौट

आते हैं। फिर गोविन्दकी समस्या उनकी समस्या बन जाती है। फिर गोविन्दके लिए उनकी हमदर्दी बहने लगती है।

"लेकिन फिर वर्धा जाकर क्या करेगा? कौन काटेगा तेरे बाल वहां, गोविन्द?" करुण स्वरमें बापूने पूछा।

"वहां एक दो हरिजन नाई भी हैं। वे बड़े प्रेमसे मेरे बाल काट देते हैं।"

"अच्छा तो जा। लेकिन अगर सेगांवके सवर्ण नाई तेरी हजामत नहीं बनाते, तो मैं भी सेगांवके सवर्ण नाईसे अपनी हजामत नहीं बनवाऊंगा!!"

बापूके ये शब्द सुनकर गोविन्द आंखें फैलाकर उनकी ओर देखता ही रह गया।

लेकिन बापूकी इस हमदर्दीने एक नई आशा, एक नया उत्साह गोविन्दके रोम-रोममें पूर दिया। वह बिजलीकी गतिसे कदम पर कदम उठाता वर्धाकी दिशामें आगे बढ़ने लगा।

आज वर्धाका ऊंचा-नीचा, टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता, उस रास्तेके हरे-भरे पेड़-पौधे और लतायें, उन पर फुदकते चहचहाते पंखी — सब गोविन्दको अपने ही जैसे आशा, उत्साह और आनन्दसे भरे भरे दिखाई पड़ने लगे। उसका मन हवामें उड़ने लगा — 'बापू कितने उदार हैं? हरिजनोंके लिए उनके दिलमें कितनी हमदर्दी है? मीरा बहन कहती थी कि सवर्ण हिन्दू हरिजनोंको अपने मन्दिरोंमें भगवानके दर्शन करने नहीं जाने देते, इसलिए बापू भी मन्दिरोंमें नहीं जाते। सेगांवके सवर्ण नाई एक महारके लड़केकी हजामत नहीं बनाते, इसलिए

बापू भी उनसे हजामत नहीं बनवायेंगे! कैसे हैं ये बापू? क्या बापूकी इस हमदर्दीसे एक दिन ऐसा आयेगा जब भंगी, चमार, महार, सबको हिन्दू समाजमें ऊंचे हिन्दुओंका दरजा मिल जायेगा — जब कोई उन्हें दुतकारेगा नहीं, कोई उन्हें धिक्कारेगा नहीं, कोई उन्हें समाजका कलंक नहीं मानेगा? सचमुच कोई दिन ऐसा आयेगा? कब आयेगा वह दिन, मेरे भगवान?'

७

पेंसिलके एक टुकड़ेकी कीमत

बापूजी अपने जीवनमें सादगीको जितना महत्त्व देते थे, उतना ही महत्त्व वे किफायत और काट-कसरको भी देते थे। स्याहीचूस स्याही चूसते चूसते जब तक लगभग काला नहीं पड़ जाता, तब तक वे उसे फेंकते नहीं थे। नाम-पतेवाले लिफाफोंको फाड़कर उनकी कोरी पीठका उपयोग वे 'हरिजन' के गंभीर लेख लिखनेमें या महत्त्वपूर्ण पत्र लिखनेमें करते थे। और पेंसिल काम देते देते जब हाथमें पकड़ने लायक न रह जाती तभी उसे इस्तीफा देते थे।

और यह सारी किफायत वे अपने लिए नहीं बल्कि देशके लिए करते थे। देशकी नंगी, भूखी, गरीब जनताके लिए करते थे। यह प्रश्न किया जा सकता है कि गांधीजीके प्रति लोगोंकी इतनी श्रद्धा थी कि उनके एक शब्द पर लोग उनके चरणोंमें लाखोंकी वर्षा कर सकते थे। फिर उन्हें [illegible]

करनेकी क्या जरूरत थी ? लेकिन गांधीजीकी तो दृष्टि ही कुछ निराली थी । वे मानते थे कि देशकी जनता उन पर विश्वास रखकर अपने खरे पसीनेकी कमाईमें से जो हिस्सा उन्हें देती है, उसकी एक एक पाई पवित्र धरोहर जैसी है, उसकी एक कौड़ी भी बेकार नहीं खरची जा सकती ।

जिस समयका प्रसंग यहां दिया गया है उस समय बापूजी बिहारकी कौमी आगको बुझानेके लिए बिहार प्रान्तके गांवोंका दौरा कर रहे थे । जिस बिहारने भारतमें गांधीजीको सत्याग्रहके जन्मदाताका बिरुद प्रदान करके सारे देशमें उनकी ख्याति फैलायी थी, वही बिहार पागल बन कर अपने मुसलमान भाई-बहनोंके खूनका प्यासा बन गया था । उस बिहारको बुद्ध और महावीरका अहिंसा, प्रेम, करुणा और शांतिका सन्देश सुनाने गांधीजी ७८–७९ बरसकी उमरमें गांव-गांव और घर-घर घूम रहे थे ।

मनु बहन गांधी उन दिनों बापूजीकी सेवामें थी। एक दिन उन्होंने बापूजीका लिखनेका सामान मेज पर जमाते हुए देखा कि उनकी पेंसिल लिखते-लिखते बहुत छोटी हो गई है । हाथमें पकड़ने लायक नहीं रह गई है । इतनी छोटी पेंसिलसे लिखनेमें बापूजीको कष्ट होता होगा, ऐसा मान कर मनु बहनने पेंसिलका वह टुकड़ा उठा लिया और उसकी जगह नई पेंसिल छील कर रख दी ।

बापूजी 'हरिजन' के लिए लेख लिखने बैठे तब उन्होंने देखा कि उनकी छोटीसी पेंसिल मेज पर नहीं है, उसकी जगह नई पेंसिल आ गई है ।

उन्होंने मनु बहनको पुकारा, "अरे मनू, जरा यहां आना तो।"

"आई, बापूजी।"

"मेरी वह छोटी पेंसिल कहां गई?"

"बापूजी, वह बहुत छोटी हो गई थी, इसलिए मैंने...।"

"तो क्या हुआ?" बापूजी बीचमें ही बोल उठे।

"इतनी छोटी पेंसिलसे लिखनेमें आपको कष्ट होता होगा, इस खयालसे मैंने उसे हटा कर यह नई पेंसिल मेज पर रख दी।"

"नहीं, नहीं। अभी उसे कैसे हटाया जा सकता है? अभी तो वह अच्छी तरह काम दे सकती है। तूने बेकार समझ कर उसे फेंक तो नहीं दिया?"

"फेंका तो नहीं।"

"तो जा, उसे ले आ। और यह नई पेंसिल संभाल कर रख दे। आगे काम आयेगी।"

"लेकिन बापूजी, उस टुकड़ेको जैसे तैसे पकड़ कर लिखनेमें आपकी अंगुलियां दुखने लगती होंगी।" मनु बहनने विनयके स्वरमें कहा।

"तू कैसी बात करती है, मनु? अगर मैं इतनी-सी तकलीफ भी बरदाश्त न कर सकूं, तो अहिंसाकी इस कठिन कसौटीमें से कैसे पार हो सकूंगा?" बापूजीने गंभीर होकर कहा।

"कभी कभी तो आपकी किफायतशारी कंजूसीकी हद तक जा पहुंचती है, बापूजी!" मनु बहनने डरते डरते कह डाला।

"तू तो ऐसी बात करती है, मानो लखपतिकी बेटी हो। वास्तवमें न तो एक पैसा मेहनत करके मैं कमाता हूं और न तू कमाती है। जनताकी खरे पसीनेकी कमाईसे ही हम दोनोंका गुजर चलता है। जनताके अनेक मुसीबतें उठाकर कमाये हुए पैसेको हम इस तरह कैसे बरबाद कर सकते हैं?"

"लेकिन जो पेंसिल पकड़ कर लिखने लायक नहीं रह गई हो, उसे हटा कर नई रख देनेमें पैसेकी बरबादी कहां हो गई?"

"तेरी इस दलीलसे मुझे बड़ा दुःख होता है, मनू। जब तक उस टुकड़ेसे एक अक्षर भी लिखा जा सके, तब तक हम उसे नहीं फेंक सकते। तू जानती नहीं, हमारा भारत कितना गरीब, कितना कंगाल है! कंगाल देशके नागरिक ऐसी अफलातूनी नहीं भोग सकते।" कहते कहते बापूजीकी आवाज फिर गंभीर हो गई।

मनु बहन चुपचाप सुनती रही। आगे एक शब्द भी बोलनेकी उनकी हिम्मत नहीं हुई।

कुछ देर रुक कर बापूजी बोले, "आज भारतके लाखों गांवोंमें ऐसे करोड़ों माता-पिता हैं, जो अपने स्कूल जानेवाले बालकोंको लिखनेके लिए पेंसिलका इतना-सा टुकड़ा भी नहीं दे सकते। इतने गरीब और कंगाल हम लोग हैं।

जा, तू मुझे अपना वही टुकड़ा ला कर दे दे। उसीसे लिखनेमें मेरे मनको शांति मिलेगी।"

आखिर मनु वहन जाकर वह टुकड़ा ले आईं। उसे हाथमें लेकर वापूजी बोले, "जरा-सी तकलीफसे डर कर हम इसे फेंक नहीं सकते। फेंक दें तो देशकी जनताको हम क्या जवाव दें? इतना-सा पेंसिलका टुकड़ा हमारे कंगाल देशमें सोनेके टुकड़ेका मोल रखता है। इसे तू समझ ले। जव तक हम कौड़ी कौड़ीकी कीमत नहीं करेंगे, हमारा आजाद हिन्दुस्तान गरीवीसे और भुखमरीसे उवरेगा नहीं। उसकी आम जनता खुशहाल और सुखी नहीं वनेगी।"

मनु वहनको अपनी भूल समझमें आ गई।

वापूजीने उसी छोटेसे टुकड़ेसे जव 'हरिजन' का लेख पूरा किया, तव उनके चेहरे पर आन्तरिक आनंद और संतोषका भाव चमक उठा!

८

बाल-देवताकी प्रसादी

बात सन् १९१५ की रही होगी। महात्मा गांधी मद्रास प्रान्तका दौरा कर रहे थे। दौरा करते करते एक बार मद्रास शहरमें वे श्री नटेसनके अतिथि बने। परिवारके सब लोगोंने बड़े प्रेम और आदरसे गांधीजीकी आव-भगत की। घरके बालकोंने भी इस सत्कारमें उमग और उत्साहसे भाग लिया।

एक दिन सुबह गांधीजी दीवानखानेमें बैठकर पेन्सिलसे कुछ लिख रहे थे। इतनेमें श्री नटेसनका ४–५ बरसका एक बालक दीवानखानेमें आया। फूल-से खिले उसके चेहरे पर उत्साह फूटा पड़ता था। गांधीजीको देखकर वह ठिठक गया। उसकी चौकन्नी आंखोंने देखा कि गांधीजी एक छोटीसी पेन्सिलको जैसे-तैसे पकड़कर कुछ लिख रहे हैं। उसे अचरज हुआ। इतने बड़े आदमी बच्चोंकी तरह इतनी छोटी पेन्सिलसे क्यों लिखते होंगे! वह सकुचाता सकुचाता गांधीजीके पास आया। उन्हें प्रणाम करके बोला: "आप इतनी छोटी पेन्सिलसे क्यों लिख रहे हैं? बड़े आदमी तो बड़ी पेन्सिलसे लिखते हैं!"

गांधीजीने हंसते हुए कहा: "मुझे छोटी पेन्सिलसे लिखना अच्छा लगता है।" फिर पूछा बालकसे: "तुम्हारे पास बड़ी पेंन्सिल है?"

"है मेरे पास। आपकी इस पेन्सिलसे वड़ी भी है और चमकीली भी है। उस पर सोनेके अक्षर हैं। मम्मीने मुझे दी है। लाऊं? आप देखेंगे मेरी पेन्सिल?" वालक वोलता जा रहा था। गांधीजी अपने लिखनेकी वातको जैसे भूल ही गये। वालककी मीठी मीठी वातोंमें रम गये।

"अच्छा, ले आओ। देखूं, कैसी है तुम्हारी पेन्सिल?"

वालक उमंगसे उछलता अंदर गया और पेन्सिलका करीव दो इंचका एक लाल, चमकीला, सुनहरे अक्षरोंवाला टुकड़ा ले आया। उसके चेहरे पर गौरवकी मीठी मुसकान थिरक रही थी।

"देखिये, है न आपकी पेन्सिलसे वड़ी और चमकीली भी? मैं झूठ नहीं वोला न?"

"तुम्हारी वात सच है। अच्छा, तुम इसे मेरी पेन्सिलसे वदलोगे?" गांधीजीने विनोदमें पूछा।

वालक थोड़ा सोचमें पड़ गया। फिर वोला: "अपनी यह पेन्सिल मैं किसीको नहीं देता। वड़ी वहनको भी नहीं। लेकिन आपको वैसे ही दे दूंगा। आपकी पेन्सिल नहीं लूंगा। पापाजी कहते हैं, आप वड़े भले आदमी हैं।"

"फिर तुम कैसे लिखोगे?"

"मैं दूसरी मांग लूंगा मम्मीसे। लेकिन आप इसे खोना मत। संभालकर रखना।"

गांधीजी: "तुम्हारी वात मंजूर है। कभी नहीं खोऊंगा। और काम देगी तव तक इसीसे लिखूंगा।"

बालकने कर्ण जैसी उदारतासे अपनी पेन्सिल गाधीजीको दे दी। उन्होंने अपनी पेन्सिल थैलीमें डाल दी और बालककी दी हुई पेन्सिलसे लिखने लगे। उसके आनंदका पार न रहा। उछलते-कूदते जाकर यह खबर उसने अपनी बहनको सुनाई।

उसी साल दिसम्बरमें काग्रेसका वार्षिक अधिवेशन बम्बईमें हो रहा था। गाधीजी उसमें शामिल होने बम्बई गये।

एक दिन काकासाहब कालेलकर गाधीजीसे उनके मुकाम पर मिलने आये। उन्होंने देखा कि गांधीजी सामनेकी मेज पर रखी फाइलें और दूसरे कागज इधर-उधर हटाकर कुछ ढूंढ रहे हैं। लेकिन उसके न मिलनेसे परेशान हो रहे हैं। इतना परेशान होते गांधीजीको उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। पूछा: "क्या खोज रहे हैं, बापू? मुझे बताये तो मैं भी खोजनेमें आपकी मदद करूं।"

"एक छोटीसी पेन्सिल खोज रहा हू, काका। पता नही कहां रख बैठा हूं।"

काकासाहबने अपनी जेबसे दूसरी पेन्सिल निकाली और गाधीजीको देते हुए कहा: "अभी आप मेरी पेन्सिलसे लिखिये। अपना काम न रोकिये।"

"नही काका, जब तक मेरी वह पेन्सिल मिलेगी नही तब तक मुझे चैन नहीं पड़ेगा।"

"लेकिन बापू, उस पेन्सिलमें ऐसी क्या विशेषता है, जो उसके लिए आप इतने परेशान हो रहे हैं?"

"तुम नही समझ सकते उसकी विशेषताको, काका।"

काकासाहब सचमुच नहीं समझ पा रहे थे कि बापू आज एक पेन्सिलको लेकर इतने अशान्त क्यों हो रहे हैं। बोले: "बापू, मैं भी उसे खोजता हूं। लेकिन अगर न मिली तो क्या बिगड़ जायगा उसके बिना?"

"सब कुछ बिगड़ जायगा, काका! तुम नहीं जानते वह मेरी बहुत प्रिय वस्तु है। उस पेन्सिलके साथ एक नन्हें कोमल बच्चेके दिलका प्यार जुड़ा हुआ है। उसे मैं किसी हालतमें नहीं खो सकता।" खिन्न होकर गांधीजी बोले।

"कौन है वह भाग्यवान बच्चा, मैं भी तो जरा जानूं?" काकासाहबने उत्कंठा बताई।

"मद्रासवाले नटेसनका ४–५ सालका छोटा लड़का। बड़ी ममतासे अपनी कीमती पेन्सिल उसने मुझे दी थी। और उसे खो न देनेका मुझसे वचन लिया था। उसे मैं उस बालककी प्रसादी मानता हूं। तबसे आज तक मैंने उसे जतनसे संभाला है। अपने कई कीमती पत्र उससे लिखे हैं।"

काकासाहब गांधीजीके मनकी वेदनाको समझ गये और पेन्सिल खोजनेमें जुट गये।

गांधीजीको परेशान करनेवाली वह अगली पेन्सिल दम साधकर एक फाइलके भीतर छिपी बैठी थी; और दक्षिण अफ्रीकामें जनरल स्मट्सकी शक्तिशाली सरकारको हरानेवाले सत्याग्रही गांधीका इतना प्यार पाकर मन ही मन इतरा रही थी।

आखिर काकासाहबने पेन्सिलका [illegible] ही [illegible] गांधीजीके हाथ पर रखा तब उन्हें ऐसा ही आनन्द हुआ, जैसा किसी बच्चेको अपनी भूली हुई प्यारी [illegible] है।

९

बच्चोंके बापू

भारतका ऐसा कौन बालक होगा, जिसने गांधीजीका नाम न सुना हो? उनके जीवनके अनेक रूप थे। वे भारतके सबसे बड़े राजनीतिक नेता थे। महान सत्याग्रही थे। बुद्ध, महावीर और ईसाकी तरह सत्य और अहिंसाके महान उपासक थे। सन्त और महात्मा थे।

लेकिन उनका एक और भी मनोहर रूप था। बालकोंसे वे बहुत प्यार करते थे। बालकोंको वे भगवानके दूत मानते थे और उनका आदर करते थे। अपने महात्मापन और नेतापनको भूल कर वे बालकोंके साथ पूरे बालक बन जाते थे। देशके बड़ेसे बड़े काममें लगे हों, कोई बड़ीसे बड़ी समस्या हल करनेमें लीन हों — उस समय भी किसी बालकको पास आया देखते, तो बापूके होंठों पर मीठी मुसकान फैल जाती थी। बालकसे प्यारके दो शब्द बोले बिना वे रह ही नहीं सकते थे।

एक बार गांधीजी साबरमती आश्रममें अपने कमरेमें बैठे 'नवजीवन' के लिए एक गंभीर लेख लिख रहे थे। इतनेमें आश्रमके १२–१४ वर्षके कुछ बालक उनके पास आये और प्रणाम करके खड़े हो गये। उन्हें देखते ही गांधीजी मुसकरा उठे। उन्होंने पूछा: "आज सवेरे ही सवेरे यह वानर-सेना मेरे कमरे पर क्यों आ चढ़ी है?"

बालकोंका अगुआ बोला : "बापू, आज आपको हमारे साथ साबरमतीमें नहाने चलना है ।"

"अरे, वाह रे डिक्टेटर! नेता बनकर इस तरह हुक्म छोड़ना तूने कबसे सीख लिया है?" कहते-कहते गांधीजी खिलखिला पड़े ।

नेता थोड़ा झेंपा । उसकी आज्ञा अब प्रार्थनामें बदल गई : "आज तो आपको हमारी बात माननी ही होगी । चलिये न, बापू!"

"लेकिन तुम्हारी इच्छा पूरी करनेके लिए अभी मेरे पास समय नहीं है । फिर कभी चलूंगा ।"

दूसरा बालक बोला : "समय आपके पास कब रहता है? हमेशा ही तो आप किसी न किसी काममें जुटे रहते हैं ।"

"क्या आप ऐसा मानते हैं, बापू, कि बड़ोंको बच्चोंके खेल-कूद और आनन्द-उत्सवमें भाग नहीं लेना चाहिये?" तीसरे बालकने प्रश्न किया ।

"नहीं, ऐसा तो मैं नहीं मानता । बड़ोंको बालकोंके खेलोंमें, उनके आनन्द और उत्सवोंमें जरूर भाग लेना चाहिये ।" बापूजीने उत्तर दिया ।

चौथा बालक सामने आकर बोला : "बापू, आप हमारी इतनी-सी बात भी नहीं मानेंगे? हम तो आपकी हर बात मान लेते हैं । आप कहते हैं कि तकली चलाओ, हम तकली चलाते हैं ।"

पांचवां बोला: "आप कहते हैं कि भगवानकी प्रार्थना करो, हम चुपचाप बैठ कर भगवानकी प्रार्थना करते हैं।"

छठेने जोड़ा: "और बापूजी, आपके कहनेसे हम प्रार्थनामें आंखें भी मूंद लेते हैं। इधर-उधर देखनेको मन हो आता है, तो भी हम आंखें बन्द किये रहते हैं।"

बापूजी: "इधर-उधर देखनेका मन इसलिए होता है कि आंखें मूंद कर तुम भगवानका ध्यान नहीं करते। प्रार्थनाके समय मनमें बालक ध्रुवको वरदान देनेवाले और भक्त प्रह्लादको संकटसे बचानेवाले भगवानकी मूर्ति खड़ी करनी चाहिये।"

एक और बालकने बात आगे बढ़ाई: "आप कहते हैं इसलिए हम सुबह कसरत करते हैं, दंड पेलते हैं, बैठक लगाते हैं और शामको आटा-पाटा और कबड्डीका खेल भी खेलते हैं।"

"तभी न तुम सबके चेहरों पर तेज और प्रसन्नता बनी रहती है। जो बच्चे खुली हवामें कसरत नहीं करते, घरके भीतर और स्कूलके कमरोंमें बैठ कर किताबें ही रटा करते हैं, उनके चेहरे कैसे फीके और मुरझाये हुए दीखते हैं? जिस बालकका शरीर स्वस्थ रहता है, उसका मन भी स्वस्थ और प्रसन्न रहता है। उसकी बुद्धि भी तेज होती है।" व्यायामके लाभ गिनाते हुए बापूजीने कहा।

"तो बापू, हम आपकी इतनी सारी बातें जब मान लेते हैं तब आप क्या हमारी एक बात भी नहीं मानेंगे? आज तो आपको हमारे साथ नहाने चलना ही होगा!" सब बच्चोंने आग्रह और अधिकारके स्वरमें कहा।

और एक चंचल बालक दौड़ कर कस्तूरबासे बापूजीको धोती और तौलिया मांग लाया। दूसरेने बिना कहे चप्पलें लाकर उनके सामने रख दीं।

अब तो बापूजी हार गये भोले बच्चोंके इस मीठे आग्रहके सामने। वे अपना सामान समेट कर चलनेकी तैयारी करने लगे। फिर क्या पूछना? सारा आश्रम बच्चोंकी किलकारियोंसे गूंज उठा।

बापूजीने देखा कि बच्चोंसे कुछ अपनी बात भी मनवा लेनेका यह अच्छा मौका है। उन्होंने कहा: "लेकिन मेरी एक बात तुम मानो, तो ही मैं नहाने चलूं।"

बच्चोंके आनन्दने उत्सुकताका रूप ले लिया। न जाने बापू कौनसी बात कहते हैं!

बापूजी बोले: "मैंने सुना है कि तुम लोग आपसमें कभी कभी गुस्सेमें एक-दूसरेको मार देते हो, कभी आपसमें गालियां देने लगते हो। यह बात क्या आश्रमके बालकोंको शोभा देती है?"

सब बालक बोल उठे, "नहीं। ऐसा करना बुरा है। लेकिन गुस्सेमें आकर हम ऐसा कर बैठते हैं। बादमें हमें बुरा लगता है। हम पछताते भी हैं।"

"तो आजसे तुम निश्चय करो कि आपसमें सदा प्रेमसे रहोगे। कभी किसीसे झगड़ा नहीं करोगे। कभी गाली-गलौज या मार-पीट नहीं करोगे।"

बालक सब सोचमें पड़ गये—'कभी भान न रहा और निश्चय टूट गया तो? टूट गया तो स[illegible] बापूजी [illegible]

देंगे और फिर प्रेमसे रहनेकी कोशिश करेंगे ।' सबके भीतरसे यही एक आवाज उठी । और सबने बापूसे कहा :

"बापू, इस निश्चय पर चलनेका हम भरसक प्रयत्न करेंगे। लेकिन कभी टूट गया तो आपको सच-सच कह देंगे और दुबारा इस पर चलनेका प्रयत्न करेंगे । ऐसा हो तो आप बुरा तो नहीं मानेंगे ?"

"बिलकुल नहीं । सच्चे मनसे तुम प्रयत्न करो, इतना मेरे लिए काफी है ।"

बच्चोंके मुंह पर फिर प्रसन्नता खेलने लगी ।

बापूजीने धोती-तौलिया बगलमें दबाया और चप्पलें पहनकर साबरमतीकी दिशामें निकल पड़े । आगे-आगे बालक उछलते-कूदते जा रहे थे । उनके पीछे गांधीजी प्रसन्न मुद्रामें चल रहे थे ।

नदीके किनारे पहुचे कि बापूजीका हुक्म हुआ : "सब लोग अपने-अपने कपड़े साफ जगह देखकर तरतीबसे रख दो ।"

बच्चोंने हुक्मका पालन किया ।

दूसरा हुक्म छूटा : "पानीमें उतरकर पहले सब अपने हाथ-पांव, नाक-कान, आंखें और सिर अच्छी तरह मल-मलकर साफ करो । फिर आनंदसे नहाना ।"

बच्चे अंगोंकी सफाई करनेमें जुट गये ।

इसके बाद बापूजीने बारी-बारीसे हरएकको पानीमें डुबकियां लगवाईं, कंधों पर उठा कर पानीमें गोते लगवाये और तैरना न जाननेवालेको तैरनेकी कला सिखाई ।

"बापू, आप तो तैरना भी जानते हैं। अब हमें जरा तैर कर बताइये न!" सब बोल उठे।

बापू जोशमें आ गये। उन्होंने लंगोट चढ़ाया और तैरना शुरू किया। बच्चे एकटक देखते रहे। बापू गहरे पानीमें पहुंचे और यह गये, वह गये — देखते ही देखते कोई डेढ़-सौ गज दूर निकल गये। बच्चोंकी खुशीका पार न रहा। उनके मुंहसे प्रशंसाका स्वर फूट पड़ा: "शाबाश! बापू, शाबाश!!" मानों अपने किसी बाल-मित्रको ही तैरनेमें कमाल कर दिखाने पर हृदयसे बधाई दे रहे हों।

वहां कुछ मिनट सुस्ता कर बापू लौट पड़े। पास आने पर बालकोंने उन्हें घेर लिया। बापू बोले: "चलो, अब बाहर निकलें। काफी देर हो गई है।"

सब बालक तुरन्त पानीसे बाहर निकल आये। सबने अपने शरीरोंको तौलियेसे खूब रगड़ कर पोंछा और सूखे कपड़े पहने। चड्डियां धोईं और वापस चलनेको तैयार हो गये।

बापूने सबके अंगोंको देखा और कहा: "आज तुम्हारे शरीर कैसे साफ और स्वच्छ हो गये हैं। आदमी जरा सावधानीसे स्नान करे, तो शरीर पर साबुन लगानेकी जरूरत न रहे। साबुनको अच्छी तरह साफ न किया जाये, तो उलटा वह चमड़ीको नुकसान पहुंचाता है।"

इस पर जिस बच्चेने बापूकी 'आत्मकथा' की बातें अपने पिताजीसे सुन रखी थीं, वह बोल पड़ा: "एक बार साबुन लगानेसे आपको दाद हो गई थी न, बापूजी?"

"हां, भाई। तब में १८–१९ सालका था। जहाज पर सवार होकर बैरिस्टरी पास करने विलायत जा रहा था।"

"तब आप शरीर पर साबुन लगाते थे, बापू?" एक बालकने कुतूहलसे पूछा।

"हां, तब में साबुन लगाकर नहानेमें शान और सभ्यता मानता था। लेकिन जहाज पर समुद्रके खारे पानीसे नहाना पड़ता था। खारे पानीके कारण साबुन शरीर पर चिपक जाता था। इसीसे दाद हो गई थी।"

"दाद फिर कैसे मिटी?" उसी बच्चेने प्रश्न किया।

बापूने कहा: "एक डॉक्टर मित्रने दाद पर लगानेको दवा दी थी। वह इतनी जलती थी कि मैं रोने लगता था।"

"बिलकुल हमारी तरह रोने लगते थे, बापूजी?" बच्चोंने अचरजसे पूछा।

"हां, तुम्हारी तरह। दवाई जब अंगारे जैसी चमड़ी पर जले तब क्या हो?"

बच्चोंको भरोसा नहीं आ रहा था। इतने बड़े बापू भी कभी हम बच्चोंकी तरहसे रो सकते हैं?

उसी समय बापू बोले: "अच्छा बातें बहुत हो लीं। अब हम रामनाम गाते गाते लौट चलें।"

और बालकोंके कोमल कंठसे वातावरणमें रामधुन गूंज उठी:

रघुपति राघव राजा राम।
पतित-पावन सीता राम।

१०

सबसे कीमती भेंट

सन् १९४२ में भारतने गांधीजीके नेतृत्वमें आजादीकी आखिरी लड़ाई लड़ी थी। अंग्रेजोंकी विदेशी हुकूमतसे लड़ी गई इस लड़ाईका बुलन्द नारा था: "अंग्रेजो, भारत छोड़कर चले जाओ!" अंग्रेज सरकार भला इसे कैसे सहन करती? यह तो भारतमें उसके अन्यायी और अत्याचारी शासनकी मौतका नारा था। उसने कांग्रेसके सारे नेताओंको कैद करके जेलोंमें डाल दिया। गांधीजीको दूसरे कुछ नेताओंके साथ पकड़ कर पूनाके पास आगाखां महलमें नजरबन्द कर दिया। वहां गांधीजी १९४४ में मलेरियाके शिकार हो गये। इससे उनकी तबीयत बहुत कमजोर हो गई। अंतमें सरकारने घबरा कर उन्हें छोड़ दिया।

जेलसे छूटनेके बाद गांधीजी अपना स्वास्थ्य सुधारनेके लिए बम्बईके जुहू नामक स्थानमें रहने गये। डॉक्टरोंने उन्हें एकान्त स्थानमें पूरा आराम करनेकी सलाह दी थी। लेकिन मुलाकातियोंने उन्हें आराम नहीं लेने दिया। उनके दर्शनोंके लिए आनेवाले लोगोंका दिन भर तांता बंधा रहता था। अंतमें श्रीमती सरोजिनी नायडूने गांधीजीको पूरा आराम देनेका बीड़ा उठाया। जिस बंगलेमें गांधीजी ठहरे थे उसके दरवाजे पर बैठ कर उन्होंने कड़ा पहरा दिया और लोगोंको मानाजी मोल लेकर भी किसीको गांधीजीके पास जाने नहीं दिया।

एक दिन वे सुबहके समय दरवाजे पर बैठकर पहरा दे रही थीं। मनमें उन्होंने पक्का निश्चय कर लिया था कि आज किसी लाट साहबको भी गांधीजीके पास जाने नहीं देंगी। लेकिन कुछ ही देर बाद १२-१३ वर्षका एक बालक दरवाजे पर आया। रंग उसका सांवला था। नेकर और कमीज मटमैली और फटी हुई। बाल रूखे और बिखरे हुए। पोषणके अभावमें शरीर दुर्बल और मुंह पीला। लेकिन उसकी आंखोंमें एक प्रकारकी चमक और चेहरे पर प्रसन्नताकी झलक दिखाई देती थी।

उसने श्रीमती नायडूको दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा: "माताजी, मुझे बापूजीके पास जाना है।"

"किसलिए?" श्रीमती नायडूने पूछा।

"मुझे बापूजीसे मिलना है और उन्हें कुछ देना है।" विनयकी स्वरमें बालक बोला।

"बापूजीकी तबीयत ठीक नहीं है, बच्चे। तुम अन्दर नहीं जा सकते।"

"लेकिन माताजी, मैं तो एक मील चलकर बापूजीके दर्शन करने ही यहां आया हूं। मुझे दो मिनटके लिए तो भी अन्दर जाने दीजिये।" गिड़गिड़ा कर वह बोला।

"तुम्हारे हाथकी इस पोटलीमें क्या है?" श्रीमती नायडूने पूछा। "इसमें थोड़े फल हैं। बापूजीके लिए लाया हूं—वे कमजोर हो गये हैं न इसलिए। अच्छे ताजे और मीठे फल हैं।" बालक मुसकाता हुआ बोला।

श्रीमती नायडूको लगा कि यह कोई मामूली बच्चा नहीं है। उन्होंने पूछा: "खरीद कर लाये हो या किसीसे मांगकर?"

बालकके स्वाभिमानको इस प्रश्नसे थोड़ा आघात लगा। वह बोला: "मेरे मां-बाप दोनों कभी भीख नहीं मांगते। न उन्होंने मुझे भीख मांगना सिखाया है।"

"अच्छा तो खरीद कर लाये हो। लेकिन फल खरीदनेके लिए तुमने पैसे कहांसे पाये?"

"पाता कहांसे? कहीं पड़े थोड़े ही मिल गये। काम करके मैंने जो पैसे कमाये, उन्हींसे ये फल लाया हूं।" कहते कहते बालककी आंखोंमें मेहनतका तेज फैल गया।

बच्चेकी निडरताने और उसकी स्वाभिमानकी भावनाने श्रीमती नायडूके कड़े मनको पिघला दिया। उसे बापूजीके पास जानेकी इजाजत मिल गई: "अच्छा, तुम अंदर जा सकते हो। लेकिन फल देकर तुरन्त चले आना। एक शब्द भी बापूसे मत बोलना।"

"जी, मैं बिलकुल नहीं बोलूंगा। सिर्फ उन्हें प्रणाम करूंगा और उनके चरणोंमें ये फल रख कर उलटे पांव लौट आऊंगा।" लड़केने श्रीमती नायडूको विश्वास दिलाया।

और वह खुशीसे थिरकता हुआ बापूजीके कमरेकी ओर तीरकी तरह बढ़ा। उसे अनुभव हुआ जैसे वह खुशीके पंखों पर चढ़ कर आसमानमें उड़ रहा हो।

परन्तु बीचमें उसे बापूजीकी सेवामें रहनेवाले दो साथी मिले, जिनके कठोर प्रश्नने उसे एकाएक जमीन पर ला पटका:

"ऐ लड़के, कहां घुसा जा रहा है तू ? किससे पूछ कर अन्दर आया है?"

"बाहर दरवाजे पर जो माताजी बैठी हैं उनसे पूछ कर।" बच्चेने बिना डरे जवाब दिया।

"कहां जा रहा है तू? तेरे हाथमें यह क्या है?" उसी रूखी आवाजमें एक साथीने पूछा ।

"मैं बापूजीके पास जा रहा हूं । मेरे हाथमें फल हैं, जो मैं बापूजीके लिए ले जा रहा हूं ।"

"फल तू कहांसे लाया?" दूसरे साथीने प्रश्न किया ।

"बाजारसे ।" बालकने उत्तर दिया ।

"चुरा कर तो नहीं लाया?" उसी साथीने फिर प्रश्न किया ।

अब बालकका स्वाभिमान तिलमिला उठा । उसने हुंकार किया: "चोरी करना मैं हराम समझता हूं, साहब! मैं, मेरे पिता और मेरी मां तीनों हमेशा मेहनत करते हैं और मेहनतकी कमाई खाते हैं ।"

बालकके इस तीखे उत्तरसे दोनों साथी खिसियाने पड़ गये। बोले: "अच्छा, जा। बापूजीको फल देकर तुरन्त चले आना ।"

लेकिन बालककी चाल धीमी पड़ गई । उसके भीतरका उत्साह आधा हो गया । मन विचारोंमें डूबने-उतराने लगा: "ये बापूजीके पास रहनेवाले आदमी कैसे हैं? मजूर-आश्रमके गुरुजी तो कहते थे कि बापू अपने दुश्मनसे भी प्यार करते हैं । और . . . और- उनके ये साथी? ये लोग तो मुझ

जैसे गरीब, बेगुनाह बच्चेसे भी नफरत करते हैं। मैं गरीब हूं, मेरे कपड़े मैले और फटे-टूटे हैं, इसीलिए मैं चोर हो गया? गरीब आदमी सब चोर ही होते हैं और अमीर चोर नहीं होते? स्कूलकी किताबमें तो मैंने यही पढ़ा है कि जो आदमी मेहनत करनेवाले लोगोंको चूसता है, उनकी पसीनेकी कमाई चुराता है, वही अमीर बनता है। . . . भगवान जाने क्या सच है? लेकिन इतना सच है कि मैं चोर नहीं हूं, मेरे मां-बाप चोर नहीं हैं।"

गांधीजीके कमरे तक पहुंचनेमें कुल दो-तीन मिनट ही लगे होंगे, लेकिन इतनेमें तो इस तरहके अनेक विचार बालकके दिमागमें घूम गये।

आखिर वह गांधीजीके सामने पहुंचा। उन्हें देखकर उसका मन शांत हुआ। उनके चेहरेमें बालकको अपनी प्रेमल मांकी ममता झांकती दिखाई दी। उसने पास जाकर गांधीजीके चरणोंमें प्रणाम किया। फिर फलोंकी पोटली खोली और कुछ ताजे ताजे संतरे, अंगूर और सेब बापूजीके चरणोंमें धर दिये। अन्तमें एक बार फिर उसने बापूजीको प्रणाम किया और कमरेसे बाहर निकलनेके लिए मुड़ा।

गांधीजीने लेटे लेटे ही कोमल स्वरमें कहा: "जरा ठहरो, बच्चे। इतने बढ़िया फल तुम मेरे लिए क्यों लाये? तुमने ही क्यों नहीं खा लिये?"

बालकने कोई जवाब नहीं दिया।

"क्या नाम है तुम्हारा, भाई? कहांसे आये हो? किसीने तुम्हें दरवाजे पर रोका नहीं?" गांधीजीने हंसते हंसते पूछा।

बालक फिर चुप्पी साध गया।

गांधीजीको लगा कि वह शायद बोल नहीं सकता। उन्होंने अपनी आवाजमें और ज्यादा मिठास भरकर पूछा: "तुम मेरी बातका उत्तर क्यों नहीं देते, भाई? बोलनेमें तुम्हें कोई कठिनाई तो नहीं होती?"

गूंगा कहलानेको बालकका मन तैयार न हुआ। वह बोल पड़ा: "मैं गूंगा नहीं हूं, बापूजी। लेकिन दरवाजे पर जो माताजी बैठी हैं, उन्होंने मुझसे वचन लिया है कि मैं एक शब्द भी आपसे न बोलूं।"

"ओह, तो यह बात है। पर इतने सारे फल तुम मेरे लिए क्यों ले आये, बेटा?"

"पिताजी कहा करते हैं कि फल खानेसे बीमारकी सेहत जल्दी सुधरती है। इसीलिए मैं ये फल लाया हूं।"

फलोंको देखकर गांधीजीने कहा: "फल तो बड़े अच्छे हैं। तुम्हारे प्यारकी मिठास मिल जानेसे ये और भी मीठे लगेंगे। पर इतने फल खरीदनेके लिए तुमने पैसे कहांसे जुटाये?"

"बापूजी, सुबह-शाम मैं एक सेठके बागमें मालीके साथ काम करता हूं और दिनमें मजूर-शालामें पढ़ता हूं। इस हफ्ते मेरे कामके जो पैसे मिले, उन्हीसे ये फल खरीद कर लाया हूं।"

"अच्छा, तो तुम पढ़ते भी हो और काम भी करते हो? जो लड़का पढ़नेके साथ मेहनतका काम करता है, वह

मुझे बड़ा अच्छा लगता है। मैं तुम्हारे फल जरूर खाऊंगा। लेकिन सब नहीं। आधे मैं खाऊंगा, आधे तुम खाना।" गांधीजीने खुश होकर कहा।

"नहीं, बापूजी, मैं नहीं खाऊंगा। आपको ही सब फल खाने होंगे। आपको तन्दुरुस्त बन कर देशकी बहुत-बहुत सेवा करनी है।" बच्चेने आग्रह किया।

मजदूर बालकके मुंहसे देशसेवाकी बात सुन कर बापूजी गद्गद हो गये। उन्होंने कहा: "अच्छा, मैं ही खाऊंगा। पर एक सेब तुम जरूर ले लो।"

और एक बढ़िया सेब चुनकर बापूजीने बालकके हाथ पर रख दिया। उसने बापूकी प्रसादी मानकर उसे सिर पर चढ़ाया और नेकरकी जेबमें रख लिया। जब जाते समय उसने झुक कर बापूजीको प्रणाम किया, तो प्यारसे उसकी पीठ थपथपा कर बापूने कहा:

"बेटा, मेहनतके पैसोंसे खरीदी हुई तुम्हारी यह भेंट मेरी नजरमें सबसे कीमती भेंट है। भगवान करे, तुम जीवनमें सदा अपनी मेहनतकी ही रोटी खाओ और सदा सुखी रहो!"

बापूजीका दुलार पाकर बालक निहाल हो गया। उसका सीना गर्वसे फूल उठा। उसकी चालमें ऐसी मस्ती आ गई, मानो सारी दुनियाकी दौलत उसने पा ली हो!